

मेघनाद साहा का जीवन और कार्य



मेघनाद साहा

6 अक्तूबर 1893 — 16 फरवरी 1956

मेघनाद साहा
का
जीवन और कार्य

मूल लेखक
कमलेश राय

अनुवादक
रामनिवास राय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

अप्रैल 1973 : चैत्र 1895

P. U. 3T

मूल्य : रु० 2.00

प्रकाशन विभाग में श्री म० च० वर्मा, सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान भवन, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-16 द्वारा प्रकाशित तथा भारत मुद्रणालय, नवीन शाहदरा, में मुद्रित।

प्राक्कथन

हायर सैकन्डरी कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए विज्ञान-माला की यह तीसरी पूरक पुस्तिका है।

मेघनाद साहा की गणना इस देश में उत्पन्न प्रमुख वैज्ञानिकों तथा शिक्षकों में है। पूर्वी बंगाल के एक छोटे-से गाँव में वे पैदा हुए और ढाका तथा कलकत्ते में उन्होंने शिक्षा पाई। पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय में वे प्रोफेसर नियुक्त हुए पर कुछ दिनों बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय में चले गए। इलाहाबाद से कलकत्ता लौटने पर उन्होंने 'इंस्टीच्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिजिक्स' की स्थापना की, जिसका बाद में उनके नाम पर नामकरण हुआ। कलकत्ता और इलाहाबाद दोनों जगहों पर उनके पास अनुधित्सु विद्यार्थियों का गिरोह था जिसमें से कुछ आज-कल देश के प्रमुख वैज्ञानिक हैं।

देश की राष्ट्रीय शक्तियों के साथ प्रोफेसर साहा का बड़ा तादात्म्य रहा। इंग्लैंड की रॉयल सोसाइटी की सदस्यता के अतिरिक्त उन्होंने कोई विदेशी डिग्री अथवा सम्मान स्वीकार नहीं किया। जब वे रॉयल सोसाइटी के सदस्य चुने गए तब वे 33 वर्ष के थे।

प्रोफेसर साहा का यह लघु-चरित्र विद्यार्थियों के सामने इस आशा के साथ रखा जा रहा है कि इससे उन्हें प्रेरणा मिलेगी।

नई दिल्ली
15 अप्रैल, 1968

रामनिवास राय

विषय-सूची

1

मेघनाद साहा कौन थे ?

वर्ष सन् 1956 के 16 फरवरी का दिन आनंद और उत्सव का दिन था। वसंत प्रारंभ ही हुआ था और उस दिन वसंत पंचमी और सरस्वती पूजा का उत्सव मनाया जा रहा था। सरस्वती विद्या, संगीत और कलाओं की देवी है। उस दिन दोपहर को अचानक रेडियो ने मेघनाद साहा की मृत्यु का समाचार प्रसारित किया। संगीत और आनंदोत्सव एकबारगी बंद हो गए। भारत और अन्य देशों के लोग शोक में डूब गए।

मेघनाद साहा कौन थे और क्यों संसार के सभी लोग उनकी मृत्यु से शोकमग्न हो गए ?

प्रोफेसर मेघनाद साहा उच्चकोटि के वैज्ञानिक और देश के गौरवशाली पुत्र थे। वे केवल भारत के ही प्रसिद्ध वैज्ञानिक नहीं थे बल्कि उनकी गिनती संसार के बड़े वैज्ञानिकों में थी।

वे विद्या की देवी सरस्वती के आराधक थे परंतु उनकी आराधना का ढंग औरों से जरा भिन्न था। इस संबंध में एक बड़ी मजे़दार कहानी है।

डा० मेघनाद साहा की मृत्यु के दो वर्ष पूर्व कलकत्ते में उनके पड़ोस के बच्चे सरस्वती पूजा के लिए चंदा लेने उनके पास पहुँचे। डा० साहा ने पूछा, "तुम लोग

सरस्वती की पूजा कैसे करोगे ?"

इस प्रश्न को सुनकर बच्चों को थोड़ी हँसी आई क्योंकि उन्हें आश्चर्य हुआ कि क्या इतने विद्वान् आदमी को यह भी नहीं मालूम कि सरस्वती की पूजा कैसे की जाती है। उन्होंने कहा, "श्रीमान, हम लोगों ने देवी की एक प्रतिमा बनाई है और पुजारी उसकी पूजा का कार्य करेंगे। संगीत समारोह के लिए हमने माइक्रोफोन लगा रखा है और संध्या को एक नाटक खेला जाएगा। इसी तरह हम सरस्वती पूजा का उत्सव मनाते हैं।"

डा० साहा ने कहा, "मेरे साथ ऊपर चलो, मैं तुम्हें दिखाऊँगा कि किस तरह मैं विद्या की देवी के प्रति आदर प्रदर्शित करता हूँ।"

बच्चे उनके पीछे हो लिए। डा० साहा के अध्ययन-कक्ष में प्रवेश करते ही उन्होंने पुस्तकों से भरी आलमारियाँ देखीं। अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मन और संस्कृत भाषाओं में वहाँ हजारों पुस्तकें थीं। अधिकांश पुस्तकें विज्ञान-संबंधी थीं, परंतु कुछ इतिहास अर्थशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्म और दूसरे विषयों की भी थीं। उनकी मेज़ भी पुस्तकों से भरी थी, मेज़ पर लिखने के लिए कागज, पेंसिल और कलम भी थी।

बच्चों को तब इस बात का ज्ञान हुआ कि डा० साहा अपने को पढ़ने-लिखने में व्यस्त रखते हैं।

डा० साहा ने बच्चों से कहा, "यदि तुम परिश्रमपूर्वक अध्ययन करते हो तो विद्या की देवी को सबसे बड़ा आदर दे रहे हो। उसकी पूजा करने का यही अच्छा तरीका है।"

2

स्कूली जीवन

मेघनाद साहा का जन्म 6 अक्तूबर 1893 को ढाका जिले के शेवड़ाताली गाँव में हुआ था। वे अपने माता-पिता की पाँचवी संतान थे। इनके पिता का नाम जगन्नाथ साहा था। उनकी गाँव में पंसारी की दूकान थी। इस दूकान की आमदनी पर ही उनके परिवार का गुजारा चलता था। दूकान की आमदनी थोड़ी थी परंतु उनकी माता भुवनेश्वरी देवी गृह-कार्य में इतनी निपुण थीं कि घर में किसी वस्तु की कमी नहीं मालूम पड़ती थी।

शेवड़ाताली गाँव में कोई हाई स्कूल नहीं था। इसलिए मेघनाद की प्रारंभिक शिक्षा गाँव की प्राथमिक पाठशाला में हुई। उनके पिता ने उन्हें दूकानदारी का काम सिखाने का निश्चय किया। तीस मील दूर ढाका के हाई स्कूल में अपने लड़के को अंग्रेजी शिक्षा दिलाने का कोई विचार नहीं था। अतः मेघनाद स्थानीय प्राथमिक पाठशाला में भर्ती कराए गए। जब वे पाठशाला में व्यस्त न होते तब अपने पिता के साथ दूकान का काम करते थे। परंतु बालक मेघनाद को दूकान के काम में आनंद नहीं आता था। वे पढ़ने में बहुत तेज थे। जब उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा समाप्त कर ली तब उनके शिक्षक, जो उनकी बुद्धि और उनके परिश्रम से बहुत प्रभावित थे, इस बात के लिए

उत्सुक थे कि वे आगे हाई स्कूल में पढ़ें। उन्होंने मेघनाद के पिता से इस विषय में बात की परंतु जगन्नाथ साहा को अपने पुत्र की हाई स्कूल की शिक्षा का प्रबंध कर सकना कठिन था। मेघनाद के बड़े भाई जयनाथ उनसे तेरह साल बड़े थे। जयनाथ ने हाई स्कूल तक शिक्षा पाई थी और वे इस बात के लिए उत्सुक थे कि उनका छोटा भाई किसी अच्छे स्कूल में अपनी शिक्षा जारी रखे।

शेवड़ाताली से सात मील दूर सिमुलिया गाँव में एक मिडिल स्कूल था। जयनाथ ने सोचा कि उस समय मेघनाद के लिए यह मिडिल स्कूल काफी अच्छा रहेगा। परंतु बालक मेघनाद के लिए प्रतिदिन चौदह मील पैदल चलना संभव नहीं था। इसलिए जयनाथ सिमुलिया गए और वहाँ के एक डाक्टर श्री अनंतकुमार दास से मिले। डा० दास ने मेघनाद को अपने घर में ठहरने की अनुमति दे दी ताकि वे सुविधा से स्कूल जा सकें। डाक्टर दास की इस कृपा के लिए मेघनाद ने जीवन भर उन्हें कृतज्ञता के साथ याद रखा।

मिडिल स्कूल की परीक्षा में मेघनाद ने ढाका जिले में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इससे उन्हें एक छात्रवृत्ति मिल गई जिससे उन्हें अपनी शिक्षा जारी रख सकना सहज हो गया। सन् 1905 में वे ढाका कालेजिएट स्कूल में भर्ती हुए और उन्होंने अपनी पढ़ाई इतनी अच्छी तरह की कि उनकी फीस माफ हो गई और उन्हें छात्रवृत्ति भी मिली।

सब बातें मेघनाद के पक्ष में मालूम पड़ती थीं। परंतु शीघ्र ही उनके रास्ते में कठिनाइयाँ आईं। भारत की उस समय की अंग्रेज़ी सरकार ने बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया। लोगों ने विभाजन का विरोध किया और स्वदेशी आंदोलन शुरू हुआ। उस समय बंगाल के गवर्नर सर रैमफील्ड फुलर थे। वे स्कूलों और कालेजों के दौरे पर गए। विद्यार्थियों ने हड़ताल कर दी और प्रांत के विभाजन के विरुद्ध असहमति जताने के लिए कक्षाओं में नहीं गए। बालक मेघनाद ने भी हड़ताल में भाग लिया। नतीजा यह हुआ कि मेघनाद और अन्य बहुत से लड़के स्कूलों और कालेजों से निकाल दिए गए। उनकी छात्रवृत्ति भी रोक ली गई।

मेघनाद को कठिन स्थिति का सामना करना पड़ा। कोई सरकारी स्कूल उन्हें भर्ती करने के लिए तैयार न था। उनकी छात्रवृत्ति भी रोक ली गई थी।

परंतु प्रत्येक कठिनाई का कोई-न-कोई समाधान होता है। ढाका के किशोरीलाल जुबिली स्कूल ने उन्हें भर्ती कर लिया और उन्हें छात्रवृत्ति भी दी। मेघनाद के भाई जयनाथ ने भी उनकी थोड़ी आर्थिक सहायता की। इस तरह मेघनाद अपनी पढ़ाई फिर शुरू कर सके।

कुछ महीनों के बाद मेघनाद ढाका बैप्टिस्ट मिशन की बाइबिल कक्षा में भर्ती हुए। तो क्या वे ईसाई धर्म अपनाना चाहते थे? बिल्कुल नहीं। मेघनाद को इतिहास पढ़ने का शौक था। धर्म के अध्ययन से किसी देश के इतिहास तथा संस्कृति के साथ-साथ विज्ञान के इतिहास और विशेषकर ज्योतिष के इतिहास की अच्छी जानकारी हो जाती है। ज्योतिष किसी देश में सबसे पुराना विज्ञान है और धार्मिक पुस्तकें विज्ञान की इस शाखा के पुराने ज्ञान का कुछ हाल बताती हैं। मेघनाद ने हिन्दू, ईसाई, इस्लाम, बौद्ध और जैन धर्मों का अध्ययन किया था।

बप्टिस्ट मिशन में मेघनाद ने बाइबिल का अध्ययन बड़े परिश्रम के साथ किया। मिशन ने अखिल बंग बाइबिल परीक्षा ली। बहुत-से कालेज के विद्यार्थियों के साथ-साथ मेघनाद भी इस परीक्षा में बैठे और सब लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेघनाद इस परीक्षा में प्रथम आए। उन्हें एक सुंदर जिल्द बँधी बाइबिल और सौ रुपये पुरस्कार में मिले।

सन् 1909 में एंट्रेंस परीक्षा में पूरे पूर्वी बंगाल में मेघनाद ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। अंग्रेजी, बंगाली और संस्कृत में उन्हें सबसे अधिक नंबर मिले और गणित में भी उनका स्थान प्रथम रहा।

मेघनाद सदैव अध्ययन में अनुरक्त रहते थे और अपने विषयों को अच्छी तरह सीखने के लिए उत्सुक रहते थे। वे अपने अध्यापकों का बहुत सम्मान करते थे। बाद में वे जब अध्यापक हुए तब उन्हें अपने विद्यार्थियों से वैसा ही सम्मान मिला।

3

कालेज

एंट्रेंस की परीक्षा पास करने के बाद मेघनाद ढाका कालेज में भर्ती हुए। इंटर-मीडिएट के पाठ्यक्रम को पढ़ते हुए उन्होंने जर्मन भाषा सीखना शुरू किया। इसके दो कारण थे। उन्होंने वैज्ञानिक बनने का निश्चय कर लिया था और वे जानते थे कि एक अच्छे वैज्ञानिक को जर्मन भाषा सीखनी चाहिए। जर्मनी के लोग विज्ञान में बहुत आगे बढ़े हुए थे और जर्मन भाषा में बहुत-से अनुसंधान के लेख छपते थे। दूसरा कारण यह था कि वे जर्मन भाषा को अपने चौथे विषय के रूप में पढ़ना चाहते थे। इंटर-मीडिएट के विज्ञान पाठ्यक्रम में उनके तीन प्रधान विषय भौतिकी, रसायन-विज्ञान और गणित थे। उन्होंने सोचा कि चौथे विषय के रूप में जर्मन भाषा को लेने से कुल जोड़ में उन्हें ऊँचे अंक मिलेंगे। उन्होंने जर्मन भाषा डा० नगेंद्र नाथ सेन से पढ़ी जो उसी समय जर्मनी से रसायन-विज्ञान में पी० एच० डी० की डिग्री लेकर लौटे थे। मेघनाद को उस समय के बड़े-बड़े शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रोफेसर के० पी० बासू, जिनकी बीजगणित की पुस्तक को सभी जानते हैं, मेघनाद के शिक्षकों में थे। शिक्षक मेघनाद को बहुत चाहते थे। इंटरमीडिएट परीक्षा में उन्होंने गणित और रसायन-विज्ञान में प्रथम स्थान प्राप्त किया परंतु कुल जोड़

में उन्हें तृतीय स्थान मिला। प्रिंसिपल आर्चीबाल्ड ने देखा कि मेघनाद में बहुत बड़ा वैज्ञानिक बनने के अंकुर विद्यमान हैं। इसी कारण कालेज छोड़ने के बहुत दिनों बाद तक भी वे पत्र-व्यवहार द्वारा उनका पथ-प्रदर्शन करते रहे।

ढाका में पढ़ने के बाद अपनी उच्च शिक्षा के लिए मेघनाद कलकत्ते आए। सन् 1911 में उन्होंने कलकत्ता प्रेसीडेन्सी कालेज में प्रवेश लिया और गणित में बी० एस० सी० आनर्स लिया। उस समय प्रेसीडेन्सी कालेज में बहुत-से मेधावी छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे जो बाद में उनमें से बहुत देश के वैज्ञानिक नेता बने। आज के एक बड़े वैज्ञानिक सत्येंद्रनाथ बोस मेघनाद के सहपाठी थे। निखिल रंजन सेन, जे० सी० घोष, जे० एन० मुकर्जी उनके अन्य सहपाठी थे जो बाद को विभिन्न विश्वविद्यालयों में जाने-माने प्रोफेसर बने। प्रशांत चंद्र महलनवीस और नीलरतन धर मेघनाद साहा से आगे थे। शरत् चंद्र बोस उनके समकालीन थे और नेताजी सुभाष चंद्र बोस उनसे तीन साल पीछे थे।

इन नवयुवकों को विज्ञान के क्षेत्र में देश के चोटी के वैज्ञानिकों के निकट संपर्क में आने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त था। ये बड़े लोग, जिन्होंने इन नवयुवक विद्यार्थियों को पढ़ाया और प्रेरणा दी; वे थे जगदीश चंद्र बोस जिन्होंने उन्हें भौतिकी पढ़ाई, प्रफुल्ल-चंद्र राय जिन्होंने उन्हें रसायन-विज्ञान पढ़ाया और डी० एन० मल्लिक जिन्होंने उन्हें गणित पढ़ाया। वे लोग न केवल अच्छे शिक्षक थे बल्कि उच्च कोटि के राष्ट्रवादी भी थे जिन्होंने अपने विद्यार्थियों को ऊँचे आदर्शों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा दी।

'बैचलर ऑफ सायंस' और 'मास्टर ऑफ सायंस' की परीक्षाओं में मेघनाद ने प्रथम श्रेणी और योग्यता में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। दोनों परीक्षाओं में प्रथम स्थान सत्येंद्रनाथ बोस को मिला। बाद को ये दोनों मेधावी गणितज्ञ विश्वविख्यात भौतिकशास्त्री हुए। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि गणित विज्ञान का मूल आधार है।

विश्वविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के बाद मेघनाद के सामने एक अच्छी नौकरी पाने की समस्या थी। वे गरीब थे अतएव शीघ्र ही उन्हें एक नौकरी की आवश्यकता थी। बुद्धिमान और मेधावी छात्र भारतीय सिविल सर्विस, वित्त या पुलिस सर्विस जैसी प्रतियोगिता की परीक्षाओं में बैठा करते थे। मेघनाद ने भारतीय वित्त सेवा परीक्षा में बैठने का विचार किया। परंतु उस समय की अंग्रेजी सरकार ने उन्हें बैठने की अनुमति नहीं दी। यद्यपि मेघनाद में राष्ट्रीय भावना थी पर उन्होंने राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया था। उनके मित्र और जान-पहिचान के कुछ लोगों ने राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लिया था जिनमें कुछ क्रांतिकारी भी थे। सेवा परीक्षाओं में भाग लेने से उन्हें रोकने के लिए अंग्रेजी सरकार के पास इतना ही यह बहाना काफी था।

मेघनाद के मित्रों में सुभाष चंद्र बोस, बाघ यतीन और व्यायाम पंडित पुलिन दास थे। यतींद्रनाथ मुकर्जी को बाघ यतीन का उपनाम इसलिए मिला था कि उन्होंने बाघ के साथ कुश्ती में केवल कटार की सहायता से उसे मार डाला था। बाघ के साथ कुश्ती में उन्हें विजय केवल उनकी शारीरिक शक्ति के कारण ही नहीं बल्कि उनकी मानसिक शक्ति के कारण भी मिली थी। परंतु बाघ से लड़कर ही यतीन को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने ब्रिटिश सिंह से भी लड़ने का निश्चय कर लिया था। प्रायः वे उस होस्टल में आते थे जहाँ मेघनाद रहते थे। यह सन् 1913 और 1915 की बात है। उस समय अंग्रेजों और जर्मनों के बीच प्रथम विश्वयुद्ध चल रहा था। यतीन ने सोचा कि भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध क्रांतिकारी आंदोलन शुरू करने का यह अच्छा मौका है। उन्होंने जर्मनी से सुंदरबन में हथियारों के लाने का प्रबंध किया। परंतु बालेश्वर के पास पुलिस के साथ लड़ने में वे मारे गए।

पुलिन दास एक व्यायाम शाला चलाते थे, जहाँ वे शारीरिक व्यायाम, तलवार चलाना और व्यायाम सिखाते थे। इसके अतिरिक्त वे नवयुवकों और नवयुवतियों को राष्ट्रीय सिद्धांत भी बताते थे। अंग्रेज सरकार की पुलिस और जासूस उनकी इस

व्यायाम शाला पर कड़ी नजर रखती थी।

मेघनाद का इन तेजस्वी राष्ट्रवादियों से घनिष्ठ संपर्क था परंतु वे उनके कार्यों में भाग नहीं लेते थे। ऐसा करना उनके लिए संभव नहीं था। इसका कारण उनकी गरीबी थी। उन्हें अपना और अपने छोटे भाइयों के भरण-पोषण तथा उनकी पढ़ाई का प्रबंध करना था। इसके अतिरिक्त विज्ञान में उनकी बड़ी रुचि थी। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे वैज्ञानिक अनुसंधान करते रहेंगे और राजनीतिक कार्यों में भाग नहीं लेंगे।

उन दिनों उनकी आमदनी का जरिया कुछ विद्यार्थियों को खानगी तौर पर पढ़ाना था। कलकत्ता शहर के विभिन्न भागों में वे दो-तीन विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। इनमें कुछ शामबाजार में और कुछ भवानीपुर क्षेत्र में रहते थे। इसमें उन्हें रोजाना काफी दूर इधर से उधर जाना पड़ता था। मेघनाद के पास इतना पैसा नहीं था कि वे ट्रामगाड़ी से उन लड़कों के घर जाते जिन्हें वे पढ़ाते थे। अतएव वे या तो पैदल जाते अथवा बाइसिकिल से आते-जाते थे।

4

शिक्षण और अनुसंधान

मेघनाद ने 'मास्टर ऑफ सायंस' की डिग्री सन् 1915 में ली। इसके एक साल बाद तक वे बहुत गरीबी में रहे। अगले वर्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय के उस समय के उपकुलपति प्रो० आशुतोष मुकर्जी ने विश्वविद्यालय के गणित विभाग में उन्हें लेक्चरर का पद दिया।

दुर्भाग्यवश मेघनाद की विभागाध्यक्ष प्रोफेसर गणेश प्रसाद से निभ न सकी और उन्हें भौतिकी विभाग में स्थानांतरित कर दिया गया।

मेघनाद गणित से भौतिकी विभाग में आए। अब मेघनाद को भौतिकी स्नातकोत्तर कक्षाओं को पढ़ाना था। अवश्य ही उन्होंने स्नातक (बैचलर) की डिग्री के लिए भौतिकी पढ़ी थी परंतु केवल साधारण विषय की तरह। आनर्स के लिए उन्होंने गणित लिया था और उनकी स्नातकोत्तर डिग्री भी गणित में ही थी। परंतु उन्हें मालूम था कि उच्च भौतिकी का आधार गणित ही है। अतएव उसे सीख लेना उनके लिए असंभव नहीं होगा।

मेघनाद ने कठिन परिश्रम किया और शीघ्र ही भौतिकी के एक अच्छे शिक्षक हो गए। उन्होंने केवल पढ़ाने के लिए ही नहीं वरन् भौतिकी में अनुसंधान करने के लिए

गहन अध्ययन किया। जर्मन भाषा का ज्ञान इसमें उनका बड़ा सहायक था। उन्होंने आइन्स्टाइन के आपेक्षिक सिद्धांत का अध्ययन किया जो जर्मन भाषा में छपा था और जिसका अंग्रेजी अनुवाद उस समय उपलब्ध नहीं था। आइन्स्टाइन का सिद्धांत गणित से भरा है। परंतु मेघनाद के लिए, गणित ही जिनका सबसे अच्छा विषय था, आइ-न्स्टाइन के आपेक्षिक सिद्धांत में दक्षता प्राप्त करना कठिन नहीं था। बाद में मेघनाद साहा और उनके साथी सत्येंद्रनाथ बोस ने इसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया और वह कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा छापा गया।

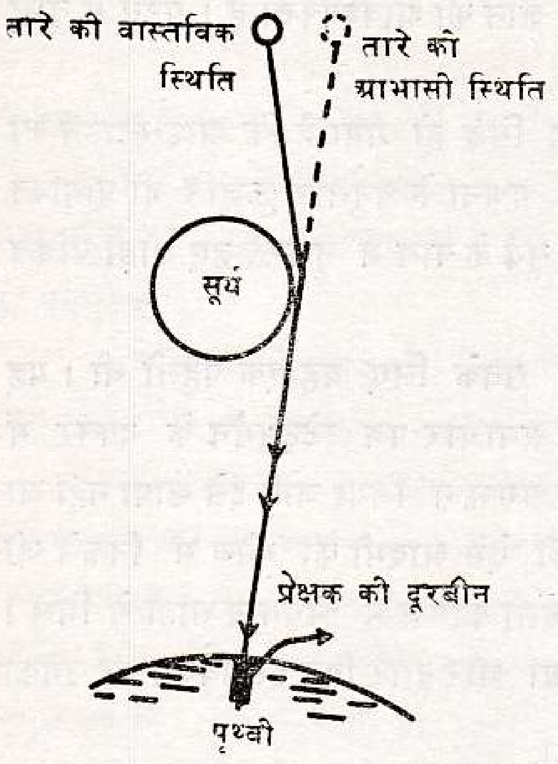
आपेक्षिक सिद्धांत क्या है? इस धारणा की व्याख्या करना बहुत कठिन है। इसे समझने के लिए उच्च गणित और भौतिकी के ज्ञान की आवश्यकता है। परंतु मैं तुम्हें एक कहानी सुनाऊँ।

सन् 1919 में समाचार आया कि यह सिद्ध हो गया है कि आइन्स्टाइन का 'आपेक्षिक सिद्धांत' ठीक है। अपनी गणित की गणना के अनुसार उन्होंने जो प्रागुक्ति की थी उसे ठीक पाया गया: 'तारों का प्रकाश सूर्य के पास से गुजरते हुए थोड़ा वक्रित हो जाता है।'

यह कैसे हुआ? इसका अर्थ क्या है? सबके लिए यह एक पहेली थी। यह समाचार तार द्वारा इंग्लैंड से कलकत्ता एक समाचार पत्र स्टेट्समैन के दफ्तर में आया। परंतु जब तक इस समाचार का महत्व समझ न लिया जाए इसे छापा नहीं जा सकता था। इसलिए समाचार पत्र वाले किसी ऐसे आदमी की खोज में निकले जो इस बात को समझा सके। सौभाग्य से वे प्रेसीडेंसी कालेज में मेघनाद साहा से मिले। उन्होंने 'प्रकाश के वक्रित' होने का अर्थ समझाया और दूसरे दिन इस विषय पर उनका लेख छपा।

आपेक्षिक सिद्धांत के अनुसार प्रकाश का भी द्रव्यमान होता है, ठीक उसी तरह जैसे द्रव्य के किसी टुकड़े का अथवा पत्थर के किसी सूक्ष्म कण का। यदि ऐसा है तो गुरुत्वाकर्षण के कारण प्रकाश को आकृष्ट होना चाहिए। जब पत्थर का कोई

टुकड़ा ऊपर की ओर फेंका जाता है तब वह ऊपर की ही तरफ चलता नहीं रहता। वह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से खिचकर नीचे की ओर पलट आता है और पृथ्वी पर गिर पड़ता है। आइन्स्टाइन ने प्रतिपादित किया कि प्रकाश का भी थोड़ा द्रव्यमान होता है और वह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के द्वारा आकृष्ट होता है। परंतु इस हालत में यदि तुम बिजली के टार्च की रोशनी को क्षैतिज दिशा में फेंको तो इसे सड़क की दूसरी ओर किसी मकान की दीवाल पर नहीं पड़ना चाहिए बल्कि इसे वक्रित होकर जमीन पर पड़ना चाहिए। परंतु हम देखते हैं कि ऐसा नहीं होता। तो क्या आइन्स्टाइन गलती पर है। ऐसा नहीं है, मैं इसे समझाता हूँ। जब हम पत्थर को फेंकते हैं तब यह वक्रित हो जाता है और थोड़ी दूरी पर जमीन पर गिर पड़ता है। इसका कारण यह है कि इसका वेग बहुत कम होता है। परंतु यदि हम किसी बंदूक से गोली मारते हैं तो गोली बहुत अधिक दूरी तय करने के बाद जमीन पर गिरती है क्योंकि इसकी चाल बहुत अधिक होती है। जैसा तुम जानते हो प्रकाश की चाल तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकंड (1,86,000 मील प्रति सेकंड) होती है।



चित्र 1. किसी तारे से आने वाला प्रकाश का सूर्य द्वारा विचलन। सूर्य पृथ्वी, एवं तारे की स्थिति तथा दूरियाँ सानुपात नहीं हैं।

पृथ्वी की आकर्षण शक्ति इतनी प्रबल नहीं है कि प्रकाश किरणों का वक्रित होना सहज ही देखा जा सके। वस्तुतः देख सकने के लिए यह झुकाव बहुत कम है। आइन्स्टाइन ने कहा कि पृथ्वी का द्रव्यमान इतना बड़ा नहीं है कि देख सकने भर

को प्रकाश की किरणों को आकृष्ट कर सके। यदि पृथ्वी और बड़ी तथा भारी होती है तो वह प्रकाश पर अपना प्रभाव दिखा सकती क्योंकि भारी पिंडों का गुरुत्वाकर्षण अधिक होता है। आइन्स्टाइन ने कहा कि सूर्य पृथ्वी से 330,000 गुना भारी है। इस कारण दूर तारों से आने वाले प्रकाश को सूर्य का गुरुत्वाकर्षण इतना झुका सकता है कि वह दिख जाए। तारों की अपेक्षा सूर्य हमारे समीप है। यदि एक दूरस्थ तारा सूर्य के पीछे से झाँक रहा है तो हम तारे को सूर्य के पास देख सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि इस तारे का प्रकाश सूर्य के पास से गुजर कर हम तक पहुँचेगा। आइन्स्टाइन ने यह प्रागुक्ति की कि आपेक्षिक सिद्धांत के अनुसार ऐसे तारे का प्रकाश सूर्य के खिंचाव के कारण थोड़ा झुक जाएगा और हमें यह तारा आकाश में अपने वास्तविक स्थान से हटा हुआ दीखेगा (चित्र-1)। परंतु कठिनाई यह है कि हम चमकते सूर्य के साथ-साथ तारे को देख नहीं सकते? आइन्स्टाइन ने सुझाव दिया कि जब खग्रास (पूर्ण) सूर्य ग्रहण के अवसर पर सूर्य की चमक ओट में आ जाती है तब हम तारों का विचलन देख सकते हैं। 29 मई 1919 के पूर्ण सूर्य ग्रहण के अवसर पर आइन्स्टाइन की भविष्योक्ति का सत्यापन हुआ।

आइन्स्टाइन ने प्रतिपादित किया कि प्रकाश में द्रव्यमान होता है। अतएव जब प्रकाश किसी सतह पर पड़ता है तब उस पर थोड़ा दाब पड़ना चाहिए। इससे पहले जेम्स क्लार्क मैक्सवेल का भी प्रकाश के दाब के संबंध में यही विचार था। मैक्सवेल और आइन्स्टाइन दोनों ने गणित से प्रकाश के दाब की गणना की। परंतु प्रयोग द्वारा प्रकाश का दाब दिखाने में कोई सफल नहीं हुआ। प्रकाश का दाब इतना क्षीण है कि वह मेज पर पड़े पंख को भी हटा नहीं सकता। सन् 1900 और 1902 के बीच कई अमरीकी और रूसी वैज्ञानिकों ने प्रयोग द्वारा प्रकाश का दाब नापने का प्रयत्न किया किन्तु वे सफल नहीं हुए।

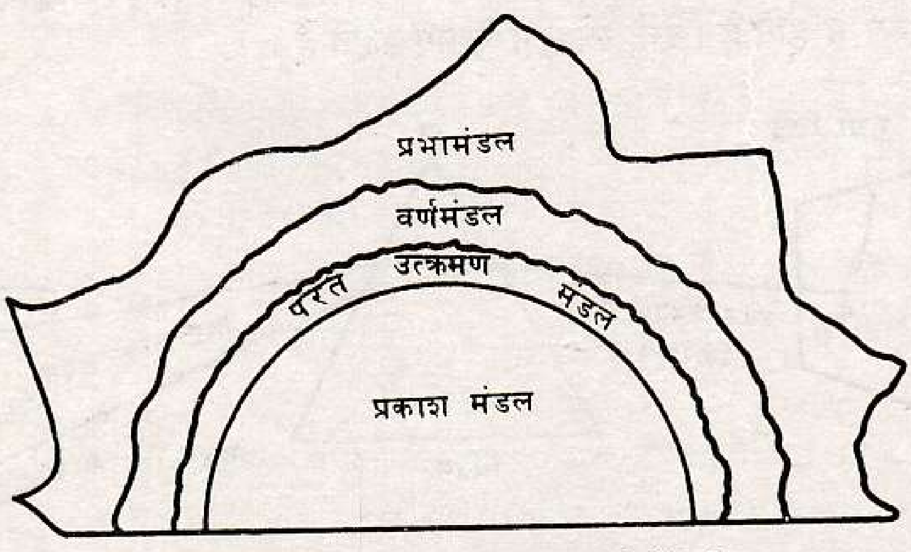
मेघनाद साहा पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने एक बहुत सूक्ष्मग्राही उपकरण बनाया और प्रयोग से दिखाया कि जब प्रकाश किसी सूक्ष्म वस्तु पर पड़ता है तब उस वस्तु

पर दाब पड़ता है। साहा ने इस दाब को नापा जिससे प्रकाश दाब का सिद्धांत सिद्ध हो सका। इस कार्य के लिए सन् 1918 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टर ऑफ सायंस' (डी० एस० सी०) की उपाधि दी। उस समय वे 25 वर्ष के थे।

5

सूर्य किस चीज़ का बना है ?

कुछ वैज्ञानिक ऐसे हैं जो ग्रहों की गति का निरीक्षण करते हैं, उनकी गति के नियम ज्ञात करते हैं, गणना द्वारा भविष्य में उनके स्थानों की प्रागुक्ति करते हैं और तारों तथा नीहारिकाओं की स्थिति ज्ञात करते हैं। इन वैज्ञानिकों को ज्योतिषी कहते



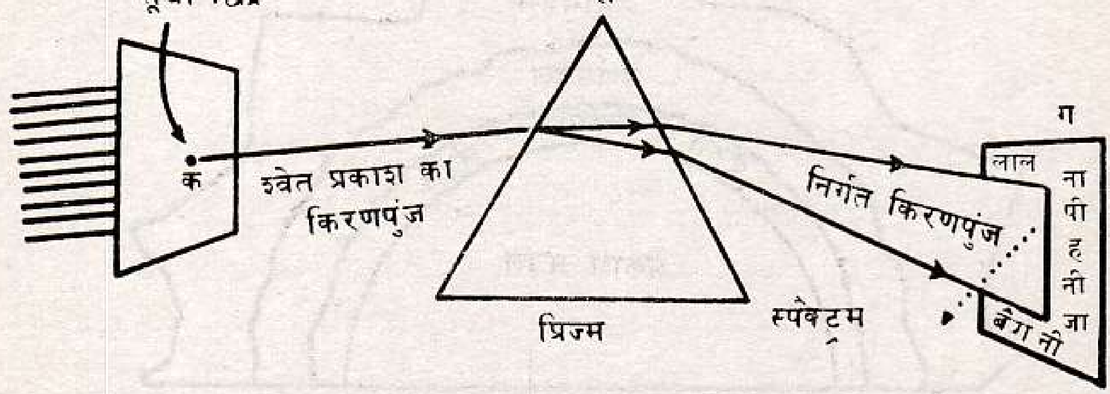
चित्र 2. सूर्य और उसके वायुमंडल का आरेखीय चित्रण।

है। दूसरे वैज्ञानिक यह जानना चाहते हैं कि सूर्य और तारे किस चीज़ के बने हैं, वे

इतने गर्म श्रौर चमकीले क्यों हैं, वे कब श्रौर कैसे पैदा हुए ? इन्हें तारभौतिक शास्त्री कहते हैं।

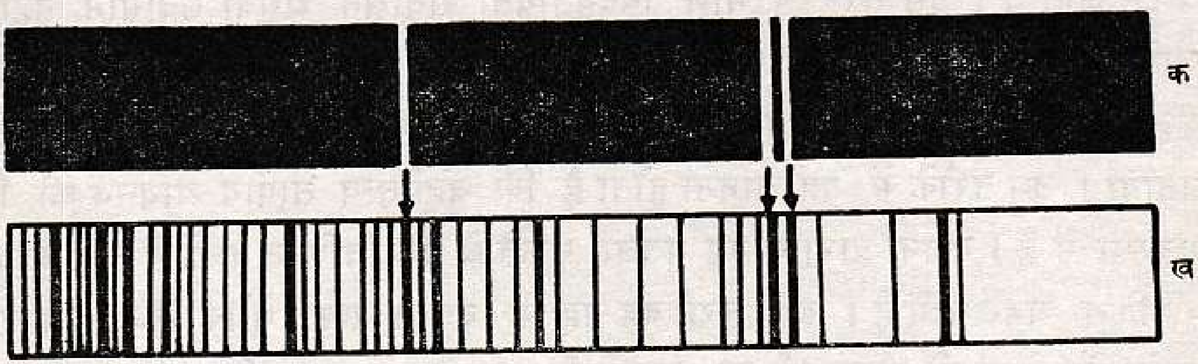
हमारा सूर्य श्राकाश में एक तारे के श्रतिरिक्त कुछ नहीं है। तारे सूर्य की श्रपेक्षा हमसे बहुत दूर हैं। इसीलिए तारे छोटे दीखते हैं, यद्यपि कुछ तारे सूर्य से बहुत बड़े हैं।

तारों श्रौर सूर्य के विषय में ज्ञान हम कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? जो प्रकाश उनसे श्राता है उससे हम उनके विषय में जान सकते हैं। सूर्य श्रौर तारों से श्राने वाले प्रकाश को जब किसी शीशे के त्रिभुजाकर प्रिज्म में से गुज़ारा जाता है तब प्रकाश रंगीन दिखाई देने लगता है। श्वेत प्रकाश रंगीन घटक प्रकाशों के मिश्रण से बना होता है। इस तरह प्रिज्म श्वेत प्रकाश को इसके रंगीन प्रकाशों में से श्रलग कर देता है। इस तरह पाए गए रंगों की पट्टी को स्पेक्ट्रममापी कहते हैं। स्पेक्ट्रममापी के जरिए देखने पर रंगीन प्रकाश इस क्रम में होते हैं : एक सिरे पर बेंगनी प्रकाश होता है, उसके बाद जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी श्रौर श्रंत में स्पेक्ट्रम के दूसरे सिरे पर लाल रंग होता है [जैसा चित्र-3 में पर्दे-ग पर दिखाया गया है।] स्पेक्ट्रम में कुछ रंग रंगीन रेखाश्रों के रूप में होते हैं। इन्हें स्पेक्ट्रम रेखाएँ कहते हैं।



चित्र 3. ज्योतिषियों के लिए विकिरण जानकारी का स्रोत है। प्रिज्म प्रकाश को तरंग दैर्घ्य के श्रनुसार पृथक कर देना है। वर्णक्रमदर्शी का यही सिद्धान्त है।

वैज्ञानिकों ने हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, कैल्सियम, लोहा और अन्य बहुत-से पदार्थों को जलाकर उनके प्रकाश को पैदा किया है। उन्होंने इनके प्रकाश का विश्लेषण करके उनके स्पेक्ट्रमों का फोटो लिया है। इसलिए वे प्रत्येक पदार्थ के स्पेक्ट्रमीय रंग अर्थात् स्पेक्ट्रमीय रेखाओं को जानते हैं। अतएव वे जब-जब तारों और सूर्य के प्रकाश का विश्लेषण करते हैं तब उनकी स्पेक्ट्रम रेखाओं की तुलना ज्ञात स्पेक्ट्रम रेखाओं से करके उन पदार्थों की प्रकृति के बारे में जान सकते हैं जो सूर्य और तारों में जल रहे हैं [देखिए चित्र-4]।



चित्र 4. 'ख' में सूर्य के उत्सर्जी वर्णक्रम के एक भाग की काली रेखाएँ दिखती हैं। 'क' में एक तत्त्व का अवशोषण वर्णक्रम है। दोनों वर्णक्रमों की तुलना से सूर्य के किसी तत्त्व की उपस्थिति का पता चलता है।

यह बहुत सहज प्रतीत होता है। परंतु सूर्य और तारों की कुछ स्पेक्ट्रम रेखाओं को वैज्ञानिक समझ न सके। जलते हुए ज्ञात पदार्थों की रेखाओं से इन रेखाओं का मेल नहीं खाता था।

डा० मेघनाद साहा इस रहस्य का हल निकालना चाहते थे। उन्होंने सूर्य और तारों के स्पेक्ट्रम के विषय में सब बातों का अध्ययन करना शुरू किया। अपने को इस अनुसंधान के लिए तैयार करने के लिए उन्होंने गत 25 वर्षों में छपे रायल ऐस्ट्रानामिकल जर्नल के कुल अंकों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया। तब से वे इस समस्या

पर विचार करने लगे और उन्होंनें गणितीय गणनाएँ भी कीं। उन्होंने इसका हल निकाल लिया। परंतु इस आसानी से नहीं जैसा मैंने बताया है बल्कि बहुत लंबे अध्ययन और गणना के बाद। उन्होंने जो हल निकाला वह यह है।

सूर्य में जो गैसें जल रही हैं वे साधारण गैसों और भापों की तरह विद्युतीयत: उदासीन नहीं होती। साधारणतः परमाणु में धन और ऋण विद्युत आवेशों के परिमाण बराबर होते हैं। अतएव साधारणत: परमाणु आवेशित नहीं होता। परंतु सूर्य में गैसों के परमाणुओं को असाधारण ऊष्मा और दाब पर रहना पड़ता है जिससे वे टूट जाते हैं। इस तरह परमाणु विद्युतीयत: संतुलित अथवा उदासीन नहीं रह जाते। वे आवेशित अथवा 'आयनित' हो जाते हैं। इस प्रक्रम को तापीय आयनन कहते हैं। इस तरह साहा ने तारों में तत्वों की उपस्थिति पहचानने का तरीका बताया। इस तरीके में यह जानना होता है कि वहाँ तत्व तापीय आयनन की किस अवस्था में हैं। गणना द्वारा वे यह बतला सकते थे कि विभिन्न तारों में तत्व आयनन की किस अवस्था में है। इस तरह वह यह भी बतला सकते थे कि किस प्रकार की स्पेक्ट्रमीय रेखा की आशा की जा सकती है। तापीय आयनन सिद्धांत पर आधारित उनकी प्रागुक्तियाँ ठीक पाई गईं। साहा का तापीय आयनन का सिद्धांत सन् 1920 में लंदन के फिलासाफिकल मैगज़ीन में छपा। तब वे 27 वर्ष के थे।

6

यूरोप की यात्रा

सन् 1919 में डा० मेघनाद साहा को कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रेमचंद्र रायचंद छात्रवृत्ति और गुरुप्रसन्न पर्यटनी फैलोशिप मिली। इनकी सहायता से उस वर्ष के अंत में वह यूरोप जा सके। वे कुछ प्रख्यात वैज्ञानिकों से मिलने के लिए और भारत में शुरू किए गए अपने अनुसंधान की रूपरेखा को जारी रखने के लिए उत्सुक थे। जिस जहाज से मेघनाद साहा जा रहे थे उसीसे कई भारतीय वैज्ञानिक भी जा रहे थे जिनमें प्रसिद्ध शिक्षक आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय भी थे।

लंदन पहुँचने पर डा० साहा के ध्यान में आया कि उनकी धनराशि उन्हें आक्सफोर्ड अथवा कैम्ब्रिज में ठहरने के लिए पर्याप्त नहीं होगी क्योंकि वहाँ का व्यय अधिक होता है। वे अपने मित्र स्नेहमय दत्त से मिलने गए जो लंदन के इंपीरियल कॉलेज ऑफ सायंस में अपनी डॉक्टर ऑफ सायंस की उपाधि के लिए अध्ययन कर रहे थे। उनकी सलाह पर डा० साहा इंपीरियल कालेज के प्रोफेसर फाउलर से मिले।

यह सलाह बहुत सफल रही। प्रोफेसर फाउलर वर्णक्रमिकी के विख्यात वैज्ञानिक थे। डा० साहा भी उसी दिशा में अनुसंधान करना चाहते थे। प्रोफेसर

फाउलर अनुसंधान में डा० साहा की अभिरुचि से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें अनुसंधान में अपना सहायक बना लिया। फाउलर ने पहले ही इस विषय पर बहुत कुछ लिखा था और साथ-साथ उन्होंने इस लिखित सामग्री का संशोधन प्रारंभ कर दिया।

जैसे-जैसे साहा ने प्रोफेसर फाउलर के साथ कार्य किया वैसे-वैसे उनका वर्ण-क्रमिकी का ज्ञान गहरा होता गया। उनका अपना सिद्धांत साहा का तापीय आयनन का सिद्धात भी दृढ़ आधार पर अवस्थित हो गया।

परंतु मेघनाद पूर्णतः संतुष्ट नहीं थे। उनके सिद्धांत ने तारों और सूर्य के स्पेक्ट्रमों की व्याख्या तो कर दी किन्तु वे प्रयोगशाला में ताप और दाब के प्रभाव सिद्ध करना चाहते थे। वे चाहते थे कि वे विभिन्न गैसों और धातुओं के वाष्पों को लगभग सूर्य पर पाए जाने वाले ताप और दाब पर गर्म करें। यदि उन्हें ऐसा उपकरण मिल जाता तो वे सीधे यह दिखला सकते थे कि उनका सिद्धांत प्रयोगशाला में देखे जाने वाले प्रकाश के स्पेक्ट्रमों पर भी लागू होता है। परंतु इंपीरियल कालेज में ऐसा कोई उपकरण नहीं था। एक दिन मेघनाद ने अपनी यह इच्छा प्रोफेसर फाउलर से प्रकट की। चूंकि प्रयोगशाला में ऐसा कोई उपकरण नहीं था, प्रोफेसर फाउलर ने उनसे कैवेंडिश प्रयोगशाला, केम्ब्रिज में पूछताछ करने के लिए कहा।

डा० साहा केम्ब्रिज में सर जे० जे० टाम्सन से मिलने गए। वे दोनों एक घंटे तक विचार-विनिमय करते रहे। प्रोफेसर टाम्सन, जो बहुत श्रेष्ठ वैज्ञानिक थे, युवक भारतीय वैज्ञानिक के अनुसंधान संबंधी विचारों से बहुत प्रभावित हुए किन्तु कैवेंडिश प्रयोगशाला में भी ऐसा कोई उपकरण नहीं था जिसका उपयोग साहा प्रयोगशाला में अपने सिद्धांत की जाँच के लिए कर सकते थे।

मेघनाद ने सर जे० जे० टाम्सन के साथ अपने विचार-विमर्श का पूरा विवरण प्रोफेसर फाउलर को दिया। प्रोफेसर फाउलर ने देखा कि मेघनाद बहुत ही निराश

थे क्योंकि इंग्लैंड में उन्हें कहीं कोई उपकरण नहीं मिल सका, जिससे वह अपना तापीय आयनन का प्रयोग कर सकते। परंतु इस नौजवान की निष्ठा और अपने विषय में अनुरक्ति से वे बहुत प्रसन्न हुए और अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनकी सहायता करना चाहते थे। अतएव उन्होंने साहा से जर्मनी में प्रोफेसर नेर्न्स्ट को पत्र लिखने को कहा जिनके पास, उनका विचार था, ऐसा उपकरण होगा। साहा ने प्रोफेसर नेर्न्स्ट को पत्र लिखा।

इसी बीच मैकलेनन ने साहा के तापीय आयनन सिद्धांत पर प्रयोग आरंभ किया। मैकलेनन ने अपने प्रयोग के लिए पारे को चुना परंतु जैसे स्पेक्ट्रम की प्रागुक्ति डा० साहा ने की थी वैसा स्पेक्ट्रम उन्हें नहीं मिला। अतएव मैकलेनन इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि साहा का सिद्धांत ठीक नहीं है। डा० साहा को मैकलेनन के प्रयोग का पता चला। उन्होंने कहा कि पारे के साथ उनके सिद्धांत के इंगित प्रभाव को देखना कठिन होगा क्योंकि प्रयोगशाला में पारे को आयनित करना कठिन है। इसके लिए बहुत ऊँचे ताप की आवश्यकता होगी और प्रयोगशाला में इतना ऊँचा ताप पैदा नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत सोडियम, पोटासियम जैसे क्षार धातु प्रयोगशाला में पैदा की हुई ऊष्मा द्वारा आसानी से आयनित किए जा सकते हैं। रुबीडियम और सीजियम जैसे कुछ अन्य तत्व साधारण ऊष्मा से भी आसानी से आयनित किए जा सकते हैं। सूर्य की ऊँची गर्मी में ये पदार्थ इतने अधिक आयनित हो जाते हैं कि इनका विशिष्ट प्रकाश दिखाई ही नहीं पड़ता। साहा ने यह भी कहा है कि इनका प्रकाश सूर्य के काले धब्बों से आए प्रकाश में संभवतः दिखाई पड़ सकता है क्योंकि वहाँ इतनी ऊँची गर्मी नहीं होती।

एक महीने के बाद अमरिका से प्रोफेसर हेनरी नारिस रसेल ने डा० साहा को लिखा कि उनकी प्रागुक्ति ठीक थी। सूर्य के धब्बों से इनका प्रकाश दिखाई पड़ता है। रसेल ने यह 254 सेमी० [100 इंच] वाले दूरदर्शक से देखा था जो उस समय सबसे बड़ा दूरदर्शक था।

उस समय तक डा० साहा जर्मनी में प्रोफेसर नेन्स्र्ट की प्रयोगशाला में जा चुके थे । यह प्रथम महायुद्ध के बाद की बात है। जर्मन अंग्रेजों द्वारा हराए जा चुके थे । स्वभावत: जर्मन अंग्रेज़ों या उनके साथियों को नहीं चाहते थे । उस समय भारत अंग्रेजों के शासन में था । अतएव जब डा० साहा जर्मनी गए तब इसमें संदेह था कि वे प्रयोगशाला में प्रवेश पाएँगे या नहीं। परंतु प्रोफेसर नेन्स्र्ट डा० साहा से बहुत प्रसन्न हुए और अपनी प्रयोगशाला की सारी सुविधाएँ उन्हें दीं। साहा के जर्मन भाषा के ज्ञान ने भी उनके कार्य में उनकी बड़ी सहायता की । दूसरे जर्मन विद्यार्थियों और प्रोफेसरों ने भी अपने सिद्धांत पर प्रयोग करने में डा० साहा को बहुत प्रोत्साहित किया । अनुकूल और उत्साहवर्द्धक वातावरण में उनका प्रयोग और अनुसंधान बहुत अच्छी तरह आगे बढ़े ।

7

शीघ्र वापसी

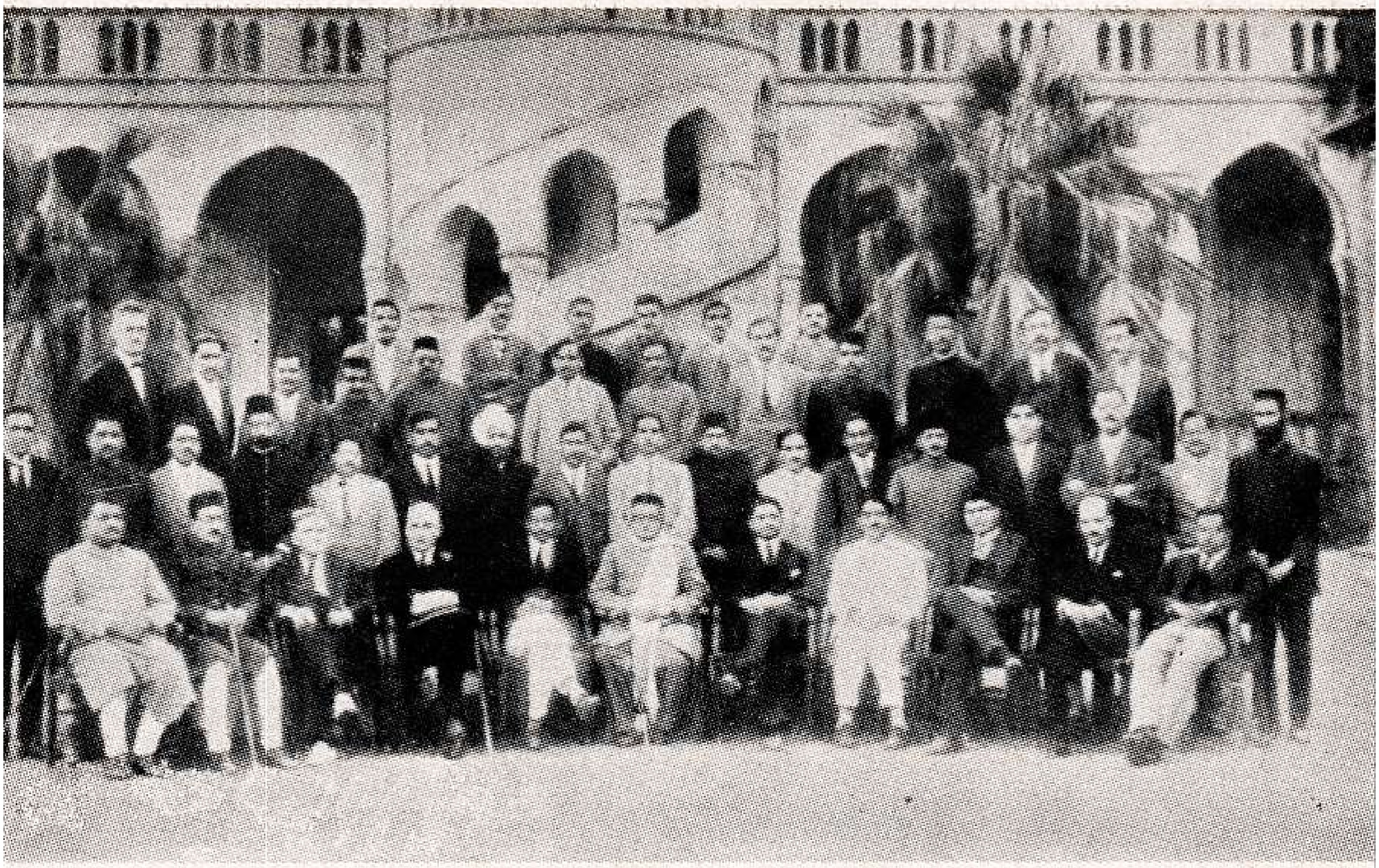
डा० साहा सन् 1921 में जर्मनी से शीघ्र वापस आ गए क्योंकि सर आशुतोष मुकर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर का पद देने का तार उनके पास भेजा। पंजाब में खैरा राज्य के गुरुप्रसाद सिंह ने विश्वविद्यालय को कुछ रुपया दान में दिया था। इस दान से एक प्रोफेसर का पद स्थापित किया गया था। सर आशुतोष ने भौतिकी पढ़ाने के लिए खैरा प्रोफेसरी स्वीकार करने और कलकत्ता विश्वविद्यालय में अनुसंधान की व्यवस्था करने की प्रार्थना डा० साहा से की।

सर आशुतोष शिक्षा के उत्कट सुधारक थे। वह विश्वविद्यालय को मजबूत और अनुसंधान का उच्च स्तर का केंद्र बनाना चाहते थे, यद्यपि भारत की अंग्रेजी सरकार उन्हें इस प्रयत्न में प्रोत्साहन नहीं देती थी। प्रोफेसर के पद के लिए धन खैरा राज्य से मिला और मेघनाद साहा इस पद पर नियुक्त हो गए। परंतु उपकरण और पुस्तकें खरीदने और अनुसंधान-सहायक नियुक्त करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी। सर आशुतोष ने बंगाल सरकार से सहायता माँगी, पर उन्हें कोई सहायता नहीं मिली।

धन का अभाव प्रोफेसर साहा के अनुसंधान की प्रगति में भारी बाधा सिद्ध

हुआ। वे केवल यही चाहते थे कि ऐसा विश्वविद्यालय हो जहाँ वे शोध कार्य कर सकें। अलीगढ़ और बनारस विश्वविद्यालय साहा को अपने यहाँ बुलाने को उत्सुक थे। डा० शांति स्वरूप भटनागर उस समय बनारस विश्वविद्यालय में रसायन के प्रोफेसर थे और चाहते थे कि उनके मित्र डा० साहा उसी विश्वविद्यालय में आ जाएँ। परंतु उन दोनों विश्वविद्यालयों के भौतिकी विभाग में अनुसंधान की सुविधा की उतनी ही कमी थी जितनी कलकत्ता में और डा० साहा को ये निमंत्रण अस्वीकार करने पड़े।

एक और निमंत्रण सर गिलबर्ट वाकर ने भेजा जो उन दिनों भारतीय मौसम-विज्ञान विभाग के निदेशक थे। सर गिलबर्ट ने कोडाईकनाल वेधशाला में सूर्य के स्पेक्ट्रम पर अपना कार्य करने के लिए पूरी सुविधाएँ डा० साहा को देने का वचन दिया। यह एक सरकारी पद था और अच्छा वेतन भी था। परंतु प्रोफेसर साहा सच्चे वैज्ञानिक की भाँति सरकारी पद के लिए विज्ञान के विस्तृत मार्ग को छोड़ना नहीं चाहते थे चाहे वह पद कितना ही आकर्षक क्यों न हो और न वे अपने अनुसंधान को सौर भौतिकी तक सीमित रखना चाहते थे।



1927 में लन्दन की रायल सोसाइटी के सदस्य चुने जाने पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा शिक्षक प्रोफेसर साहा को बधाई देने हुए। प्रोफेसर साहा बाईं ओर से पाँचवे हैं।



1937 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय में प्रोफेसर एडिंगटन।

बाएँ से (खड़े) : चन्द्रप्रकाश श्रीवास्तव, अमरनाथ टंडन, बसंती दुलाल नाग चौधरी, कल्याणबख्श, माथुर, विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव, प्रतापकृष्ण किचलू, कनकेन्दु मजूमदार, रामनिवास राय, गोविन्द राम तोषनीवाल।

बाएँ से (बैठे) : वी० वी० नार्लिकर, निखिलरंजन सेन, शाहमुहम्मद सुलेमान, मेघनाद साहा, ए० ई० एडिंगटन, अमियचन्द्र बनर्जी, ताराचन्द्र, विभा मजूमदार, रमेशचन्द्र मजूमदार।

इलाहाबाद में

ंत में प्रोफेसर साहा ने निश्चय किया कि वे कलकत्ते को छोड़कर इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में जाएँगे, जहाँ वे समझते थे कि अनुसंधान के लिए उचित वातावरण ल सकेगा।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सन् 1923 में भौतिकी का प्रोफेसर नियुक्त ने के बाद उनके सामने वही कठिनाइयाँ आईं जिनका अनुभव उन्होंने कलकत्ते में या था। सरकार से अनुसंधान के लिए धन नहीं मिलता था। पुस्तकालय में थोड़ी- पुरानी पुस्तकें थीं, विभागीय वर्कशाप में मशीनों को चलाने के लिए बिजली हीं थी और प्रयोगशाला में अनुसंधान के लिए कोई उपकरण नहीं थे। कलकत्ते में न्हें केवल एम० एस० सी० कक्षा को पढ़ाना पड़ता था परंतु इलाहाबाद में उन्हें बी० ए० सी० और एम० एस सी० दोनों कक्षाओं को पढ़ाना पड़ता था। गर्मी की छुट्टियों ही उन्हें अनुसंधान के लिए समय मिल सकता था। पर गर्मियों में इलाहाबाद हुत गर्म रहता है और उस गर्मी में अनुसंधान कार्य करना आरामदेह और सुविधाजनक हीं होता है।

धन की कमी के कारण उनका अनुसंधान कार्य मंद पड़ गया। सरकार प्रति-

रिक्त धन देने के लिए तैयार नहीं थी। स्थानीय लोगों की दृष्टि में विश्वविद्यालय का ऊँचा स्थान था। वे समझते थे कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय बहुत नवीन और आधुनिकतम था और उसे किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं थी। सरकार के लिए यह तर्क सुविधाजनक था और उसने अनुसंधान के लिए धन देने की डा० साहा की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया।

सन् 1927 में डा० साहा रॉयल सोसाइटी के फेलो [एफ० आर० एस] चुने गए। उस समय सर विलियम मारिस संयुक्त प्रदेश के गवर्नर थे। इस समय इसे उत्तर प्रदेश कहते हैं। वे एक विद्वान पुरुष थे। उन्होंने डा० साहा को उनके रॉयल सोसाइटी का फेलो चुने जाने पर बधाई का पत्र भेजा। उत्तर में पत्र के लिए धन्यवाद देते हुए डा० साहा ने उन्हें बतलाया कि किस तरह धन की कमी के कारण उनके अनुसंधान कार्य में रुकावट हो रही थी। सर विलियम मारिस ने तुरंत ही अनुसंधान कार्य के लिए 5000 रुपए वार्षिक का अनुदान मंजूर किया।

इस धन से डा० साहा अपने साथ कार्य करने के लिए कुछ शोधकर्ता छात्र नियुक्त कर सके। परंतु उपकरण और औजार खरीदने के लिए धन की अब भी आवश्यकता थी। उपकरण के अभाव में प्रयोग असंभव है। इस प्रयोजन के लिए उन्हें देश में कहीं धन नहीं मिल सका। अंत में कोई रास्ता न देख कर उन्होंने लंदन में रॉयल सोसाइटी को पत्र लिखा। रॉयल सोसाइटी ने सन् 1935 में उन्हें 150 पाउंड [जो उस समय 2000 रुपए के बराबर था] अनुसंधान के लिए उपकरण और औजार खरीदने के लिए दिया।

अंत में अब वह तापीय आयनन के अपने सिद्धांत पर प्रयोग कर सकते थे। इस सुयोग के लिए वह बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करते रहे। बारबार उन्हें हतोत्साहित तथा कुंठित होना पड़ा था किन्तु वे इसे भूले नहीं थे और न आशा छोड़ दी थी। दृढ़ निश्चय और धैर्य डा० साहा के स्वभाव की विशेषताएँ थीं और ये ही गुण हैं जो सच्चे वैज्ञानिक में मुख्यत: होते हैं।

तापीय आयनन पर उनके प्रयोगों की प्रगति ठीक रही और वे अपने सिद्धांत को दृढ़ आधार पर रख सके।

इसके साथ ही डा० साहा ने एक नई दिशा में आयनमंडल पर अनुसंधान आरंभ किया। ऊँचे वायुमंडल में वायु आवेशित अथवा आयनित होती है। पृथ्वी से कई-सौ मील की ऊँचाई पर आयनित वायु के कई स्तर होते हैं। वायुमंडल के आवेशयुक्त स्तरों के ये घेर ही आयनमंडल कहलाते हैं। आयनमंडल रेडियो तरंगों को परावर्तित करता है और पृथ्वी पर रेडियो-संचरण में सहायक होता है। पृथ्वी गोल है। लंदन से रेडियो प्रसारण भारत तक कैसे पहुँचता है? दोनों जगहें इतनी दूरी पर हैं कि यह प्रसारण पृथ्वी के एक-चौथाई भाग पर झुक कर ही पहुँच सकता है। किन्तु प्रकाश तरंगों की तरह ही रेडियो तरंगें भी वृत्त में झुक नहीं सकती। वे सीधी चलती है। दूर देशों का कार्यक्रम हमारे रेडियो-संग्राहक तथा आयनमंडल से परावर्तित होकर ही आता है। आयनमंडल के विषय में जानने के लिए बहुत-सी बातें हैं और इलाहाबाद में रहते हुए ही इस विषय पर डा० साहा ने अनुसंधान आरंभ किया था। डा० साहा की उत्प्रेरणा से वहाँ डा० गोविंद राम तोषनीवाल, डा० रामनिवास राय, डा० कल्याण बख्श माथुर, डा० रामरत्न बाजपेयी आदि ने काफी अनुसंधान किया।

9

कलकत्ते वापस

इलाहाबाद में पंद्रह वर्ष तक कार्य करने के पश्चात सन् 1938 में डा० मेघनाद साहा कलकत्ता विश्वविद्यालय में भौतिकी के तारक नाथ पालित प्रोफेसर होकर लौटे। उनके सहयोगियों ने ताप आयनन और आयनमंडलीय अनुसंधान जारी रखा।

कलकत्ते में पालित प्रोफेसर का भार सँभालने पर डा० साहा ने अपने अनुसंधान को एक पूर्णतः नई दिशा में मोड़ा। अब उन्होंने परमाणु विज्ञान में अथवा जिसे नाभिकीय भौतिकी कहते हैं अपने को लगाया। न्यूट्रॉन नामक मूल कण की थोड़े दिनों पहले खोज हुई थी और इससे नाभिकीय भौतिकी में उनकी अभिरुचि इससे स्पष्ट हो जाती है। न्यूट्रॉन में कोई विद्युतीय आवेश नहीं होता। अतएव यह नाभिक के प्रबल विद्युतीय आवेश से प्रभावित हुए बगैर ही नाभिक से टकरा सकता है। अतएव इसके लिए नाभिक को तोड़ कर नए तत्व उत्पन्न करना सहज है। उनका निश्चित विश्वास था कि विज्ञान के इस आधुनिक क्षेत्र में भारत को पिछड़ना नहीं चाहिए। उन्होंने इस कार्य के लिए अपनी प्रयोगशाला का और वर्कशाप का संगठन शुरू किया जिसमें अनुसंधान के लिए उपकरण तैयार होते, परंतु फिर पहले की तरह अनुसंधान के लिए धन दुष्प्राप्य था। विदेशों में सरकार तथा उद्योगपति वैज्ञानिक

अनुसंधान के लिए धन देते हैं। हमारे देश में विज्ञान के प्रति ऐसी चेतना की कमी थी। उस समय बहुत कम लोग यह समझते थे कि किसी देश की आर्थिक और औद्योगिक उन्नति के लिए विज्ञान आधार है।

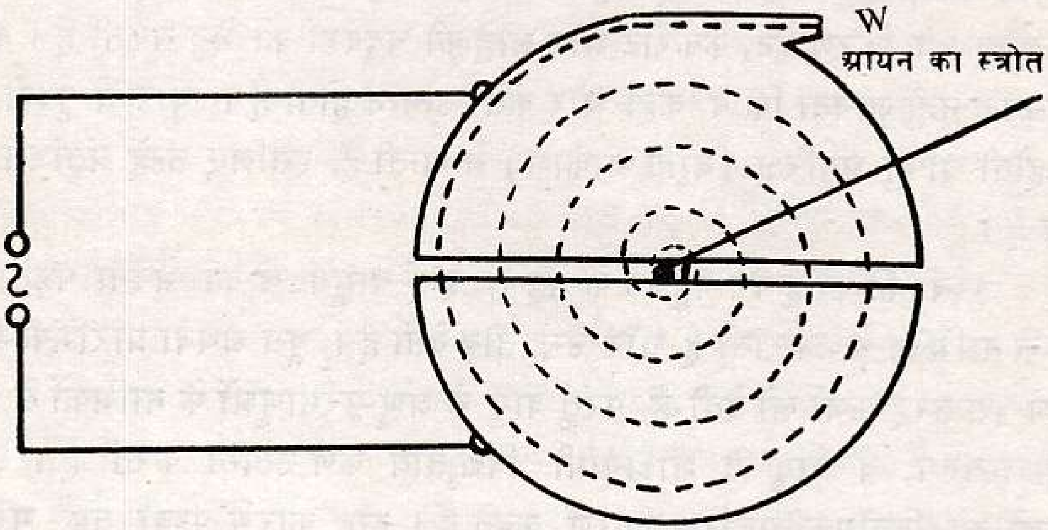
अपनी अंतरिक्ष-किरण अनुसंधान संबंधी प्रयोगशाला बना कर डा० साहा ने परमाणु अनुसंधान में पहला कदम उठाया। अंतरिक्ष किरणें पृथ्वी पर आकाश के सभी भागों से आती हैं। ये किरणें अदृश्य होती हैं, उनकी दीप्ति दिखाई नहीं पड़ सकती और वे उच्च ऊर्जा युक्त आवेशित कण होती हैं। केवल विशेष उपकरणों से उनका पता लग सकता है। चाहे रात हो या दिन अंतरिक्ष किरणों की शक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता। ये किरणें ईंट, कंकरीट और लोहे की चद्दरों को भेद सकती हैं। कोई भी ठीक-ठीक नहीं जानता कि ये कहाँ और कैसे उत्पन्न होती हैं। चूँकि वे पृथ्वी से नहीं पैदा होती अपितु अंतरिक्ष (बाह्य आकाश) से आती हैं, इसलिए उन्हें अंतरिक्ष किरणें कहते हैं।

पृथ्वी की सतह पर पहुँचने के पहले, इन्हें वायुमंडल को भेदना पड़ता है। वे वायु के नाभिकों से टकराती हैं और उन्हें तोड़ देती है। मूल अथवा प्रारंभिक अंतरिक्ष किरणें इस तरह ऊर्जा खो देती हैं, परंतु वायु के अणु-परमाणुओं के नाभिकों से टकराने के फलस्वरूप, वे वायु से शीघ्रगामी विद्युतीय कण उत्पन्न करती हैं। इन नई किरणों को द्वितीयक अंतरिक्ष किरणें कहते हैं। इस कारण पृथ्वी तक मूल और द्वितीयक अंतरिक्ष किरणों का मिश्रण पहुँचता है। अतएव वायुमंडल में जितनी ही ऊँचाई पर जाया जाता है, उतना ही मूल अंतरिक्ष किरणों को पाने की संभावना बढ़ती जाती है।

डा० साहा ने अपने दो अनुसंधायक छात्रों, डा० एन० दासगुप्त और पी० सी० भट्टाचार्य को दार्जीलिंग की पहाड़ी पर 2100 मीटर से कुछ अधिक [7000 फीट] ऊँचाई पर अंतरिक्ष किरणों को नापने के लिए भेजा।

नाभिकीय भौतिकी में अनुसंधान करने वाले के पास साइक्लोट्रॉन होना

चाहिए जो परमाणु भंजक है। साइक्लोट्रॉन प्रोटॉन अथवा किसी दूसरे आवेशयुक्त कण को ऐसी गति और ऊर्जा प्रदान कर सकता है कि वे किसी पदार्थ पर चोट पहुँचा-कर उसके परमाणुओं को तोड़ सकते हैं। इन उच्चगतीय कणों द्वारा गोलाबारी करने से गोलाबारी किए गए पदार्थ में नए तत्व उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी नया पदार्थ रेडियोधर्मी होता है और उसका उपयोग रोगों के उपचार के लिए किया जा सकता है। औषधीय उपयोग के अतिरिक्त गोलाबारी किया गया पदार्थ परमाणुओं की संरचना को प्रकट करता है और यह ज्ञान वैज्ञानिकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।



चित्र 5. ऊपर का आरेख साइक्लोट्रॉन के सिद्धांत को स्पष्ट करता है। केन्द्र से उत्सर्जित आयन D-आकृति वाले प्रकोष्ठों के लंबवत् लगे चुम्बकीय क्षेत्र के कारण वक्रों में घूमने हैं। प्रकोष्ठों के बीच प्रत्यावर्ती विभव लगा है। एक प्रकोष्ठ से निकलकर दूसरे प्रकोष्ठ में घुसने के क्षण प्रकोष्ठों के बीच के विभव के कारण उनकी उर्जा बढ़ती है। इस तरह उनकी ऊर्जा बढ़ती जाती है और उच्च ऊर्जा वाले आयन W वातायन से बाहर निकलने हैं।

डा० साहा साइक्लोट्रॉन प्रतिष्ठापित करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ थे, परंतु इसके लिए लाखों रुपयों की आवश्यकता थी। पंडित जवाहर लाल नेहरू, कलकत्ता विश्वविद्यालय और कुछ उद्योगपतियों की इसमें सहानुभूति थी और उन्होंने इस

योजना में उनकी सहायता की। टाटा एंड संस ने 60,000 रुपयों का उदारतापूर्ण दान दिया।

डा० साहा ने साइक्लोट्रॉन के हिस्सों को बनाने और खरीदने का कार्य अपने विद्यार्थी डाक्टर बी० डी० नागचौधरी को सौंपा। वे उस समय साइक्लोट्रॉन की ईजाद करने वाले डाक्टर इ० ओ० लारेंस के साथ अमरीका में काम कर रहे थे। दुर्भाग्यवश सन् 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ और साइक्लोट्रॉन की योजना में बाधा पड़ गई। पत्रों और ज्ञान का विनियम भी कठिन हो गया। डा० साहा चिन्तित हो गए और उन्होंने परमाण्वीय और नाभिकीय विज्ञान में नवीनतम परिणामों की जानकारी के लिए अमरीका में अपने मित्रों के पास पत्र लिखना प्रारंभ किया।

डा० साहा को तब यह ज्ञात नहीं था कि अमरीकियों के पास परमाणु-बम बनाने की योजना थी। परमाणु-बम की योजना का भेद बहुत गुप्त रखा गया था। अमरीका में भी जनता को कुछ पता न था। केवल वैज्ञानिकों का एक छोटा दल, जो परमाणु-बम योजना पर काम कर रहा था, इसके विषय में जानकारी रखता था। उन्हें परिवार के सदस्यों को भी यह बताने की अनुमति नहीं थी कि वे क्या काम कर रहे थे और कहाँ काम कर रहे थे।

इन सब बातों से अनभिज्ञ होने के कारण डा० साहा ने परमाण्वीय विज्ञान के बारे में अपनी पूछताछ जारी रखी। डा० साहा के एक अमरीकी वैज्ञानिक मित्र ने इस विषय में उन्हें चेतावनी भी दी।

भारतीय वैज्ञानिकों का एक दल, जिसमें डा० साहा भी शामिल थे, सन् 1944 में सोवियत संघ और अमरीका गया। अमरीकी सरकार ने भारतीय वैज्ञानिकों के भ्रमण का एक कार्यक्रम बनाया परंतु इसमें परमाणु-बम योजना अथवा परमाण्वीय अनुसंधान-प्रयोगशालाएँ शामिल नहीं थीं। अमरीकी सुरक्षा पुलिस भारतीय वैज्ञानिकों, विशेषत: डा० साहा पर, कड़ी नजर रखती रही।

जब वैज्ञानिक अमरीका से लौट रहे थे तब अमरीकी सुरक्षा पुलिस के दो

आदमी डा० साहा के पास आए। वस्तुत: वे यह जानना चाहते थे कि डा० साहा को परमाणु-बम योजना के विषय में कुछ पता है या नहीं। कुछ समय तक प्रश्नोत्तर के बाद उन्हें संतोष हो गया कि डा० साहा को परमाणु-बम के रहस्य के बारे में कोई वास्तविक ज्ञान नहीं हैं परंतु परमाणु वैज्ञानिक होने के नाते उस विषय में उनकी दिलचस्पी थी।

इन तमाम कठिनाइयों के होते हुए भी डा० नागचौधरी साइक्लोट्रॉन के महत्वपूर्ण पुर्ज़ों को लाने में सफल रहे और कलकत्ते में उसे संस्थापित करने का कार्य उन्होंने शुरु कर दिया। अन्य बहुत से पुर्जे कलकत्ते में ही बनाए गए। उच्च आवेश तंत्र का काम बी० एम० बनर्जी ने सँभाला, रेडियोधर्मिता के अनुसंधान का काम डा० साहा के लड़के डा० अजीत कुमार साहा और अन्य युवक वैज्ञानिकों ने किया और निर्वात-तंत्र का काम मुझे दिया गया।

साइक्लोट्रॉन से रेडियो-कैल्सियम और रेडियो-फॉस्फोरस जैसे कृत्रिम रेडियो-धर्मी तत्व बनाए जा सकते हैं और इनका उपयोग चिकित्सा में होता है। डा० साहा ने 'इंडियन स्कूल ऑफ ट्रापिकल मेडिसिन' से संपर्क स्थापित किया और उन लोगों ने अपने रोगियों को प्रयोगशाला में भेजना आरंभ किया।

परंतु इस का प्रकार अनुसंधान एक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी की सहायता के बिना सफलता और कुशलता से नहीं किया जा सकता है। कैन्सर, रक्तश्वेताणुमयता [ल्यूकेमिया] और अर्बुद [ट्यूमर] जैसे रोग रोगी के रक्त में परिवर्तन कर देते हैं। जीवाणु और वाइरस की प्रकृति और कार्यप्रणाली की जाँच भी शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी द्वारा की जा सकती हैं। वाइरस इतने सूक्ष्म होते हैं कि इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के अतिरिक्त अन्य किसी तरह देखे ही नहीं जा सकते। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी वस्तुओं को लाखों गुना बड़ा बनाकर दिखा सकता है। परंतु इसका मूल्य लगभग एक लाख रुपया होता है। उस समय भारत में कोई इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी नहीं था, और न कोई इसका उपयोग करने की प्रक्रिया ही जानता था।

डा० साहा इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के लिए रुपया इकट्ठा करने के लिए झोली खोले घूमे। वे भाग्यवान थे : केंद्रीय और बंगाल की सरकारों ने और सा० बी० लॉ और बिड़ला जैसे उद्योगपतियों ने धन दान में दिया।

डा० साहा ने सन् 1945 में डाक्टर एन० दासगुप्त को अमरीका भेजा। स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मार्टन इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी के आविष्कर्ताओं में हैं। डा० दासगुप्त ने प्रोफेसर मार्टन की सहायता से इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का परिरूप तैयार किया और मुख्य पुर्जों को स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के कारखाने में बनवाया।

इस तरह सन् 1950 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'युनिवर्सिटी कालेज ऑफ सायंस' के अहाते में प्रसिद्ध 'इन्स्टीच्यूट ऑफ न्यूक्लियर फीजिक्स' की स्थापना हुई, जिसे बाद में 'साहा इन्स्टीच्यूट ऑफ न्यूक्लियर फीजिक्स' का नाम दिया गया। इस तरह डा० साहा ने अपनी विशिष्ट भविष्य-दृष्टि और अदम्य उत्साह के फलस्वरूप दो महत्वपूर्ण अनुसंधान विभागों की स्थापना की : एक नाभिकीय भौतिकी के लिए और दूसरा जीव-भौतिकी के लिए।

10

व्यावहारिक विज्ञान

विज्ञान का अंतिम ध्येय मानव समाज का हित है। प्राचीन काल में सब काम मांस-पेशियों के बल का उपयोग करके हाथों द्वारा किए जाते थे। उस जमाने में कोई मशीन नहीं थी। गरीब लोग अपना काम स्वयं अपने हाथों से करते थे। धनी लोग अपना काम कराने के लिए गुलाम खरीद लेते थे जो मालिकों के लिए मेहनतकशी करते थे। बैलगाड़ियाँ, ऊँट, घोड़े और हाथी यातायात के लिए और बोझ ढोने के लिए काम में लाए जाते थे।

फिर सायंस का युग आया। वाष्प-इंजन, वाष्प-जलयान, टेलीग्राम, टेलीफोन, मोटरगाड़ी और वायुयान के आविष्कार हुए। इससे मनुष्य का काम सरल हो गया है।

आज हम ऐसी दुनिया में रहते हैं जिस पर विज्ञान का काफी प्रभाव है। जिन देशों ने विज्ञान के क्षेत्र में तरक्की कर ली है, वे धनी तथा सुखी हैं। उन्हें बेहतर भोजन तथा कपड़ा मिलता है और वे स्वस्थ तथा खुशहाल हैं। जब विज्ञान का उपयोग हमारी सहायता करने के लिए किया जाता है तब उसे व्यावहारिक विज्ञान कहते हैं।

व्यावहारिक विज्ञान विशुद्ध विज्ञान का ही एक अंग है। विशुद्ध विज्ञान के ज्ञान के बिना कोई व्यावहारिक विज्ञान तक नहीं पहुँच सकता। तो भी बाह्यतः वे भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। हम कैमरे का उदाहरण लेते हैं जिनसे तुम तस्वीरें खींचते हो। कैमरा कारखानों में बनाया जाता है। कैमरे का निर्माण व्यावहारिक विज्ञान में एक बड़ा उद्योग है। परंतु कैमरा तस्वीर कैसे खींचता है? हम जानते हैं कि प्रकाश लेन्स से होकर गुजरता है और एक प्रतिबिंब बनाता है। प्रकाश और लेन्स अथवा शीशे की पारस्परिक क्रिया विशुद्ध विज्ञान का अंश है और पहले हमें इसी का ज्ञान होना चाहिए। फिर हम इसका ज्ञान प्राप्त करते हैं कि प्रतिबिंब को फिल्म पर कैसे जमाया जाता है। इस क्रिया के लिए एक विशेष रासायनिक पदार्थ की आवश्यकता होती है। इस प्रकार हम विशुद्ध विज्ञान की एक अन्य शाखा का ज्ञान प्राप्त करते हैं जिसे रसायन-शास्त्र कहते हैं। यदि प्रकाश, शीशा और रासायनिक पदार्थ को अलग-अलग लें तो फोटो खींचने से इनका कोई संबंध नहीं दिखाई देता। विशुद्ध विज्ञान का ज्ञान ही हमें अंत में व्यावहारिक विज्ञान और शिल्पविज्ञान तक ले जाता है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने के लिए अनुसंधान की आवश्यकता होती है।

हमारा देश वैज्ञानिक अनुसंधान में अन्य उन्नतशील देशों की अपेक्षा पिछड़ा है और व्यावहारिक विज्ञान के अनुसंधान में तो और भी पीछे है। हमारे देश का औद्योगिक विकास धीमा है और इसी कारण देश में गरीबी है।

डा० साहा देश की औद्योगिक उन्नति करना चाहते थे ताकि हमारे समाज पर व्यावहारिक विज्ञान का प्रभाव पड़े।

सन् 1938 में नेताजी सुभाष चंद्र बोस इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रेसिडेंट थे। नेताजी के अभिभाषण के पश्चात् डा० साहा ने उनसे पूछा कि क्या स्वतंत्र भारत बैलगाड़ी और हल की पुरानी परंपरा को अपनाएगा अथवा आधुनिक मशीनों और उद्योगीकरण के पक्ष में होगा। डा० साहा ने कहा कि यदि भारत को उन्नति करनी है तो यहाँ विशुद्ध और व्यावहारिक विज्ञान-संबंधी अनुसंधान होना चाहिए। उनका

विचार था कि वैज्ञानिकों को मिलकर वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान का आयोजन करना चाहिए एवं राष्ट्रीय योजना बनानी चाहिए। नेताजी ने इस विचार का पूर्णतः समर्थन किया और कहा कि कोई भी देश विज्ञान, शिल्पविज्ञान और उद्योगों के बिना उन्नति नहीं कर सकता।

सन् 1938 में पंडित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना हुई। देश की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करने के लिए इस समिति ने 27 उपसमितियाँ गठित कीं। डा० साहा ईंधन और शक्ति पर विचार करने वाली उपसमिति के अध्यक्ष थे। सन् 1942 में भारत में केवल 9 इकाई विद्युतीय ऊर्जा प्रति मनुष्य, प्रति वर्ष उपयोग में लाई जाती थी। अमरीका में इसका मान 1500 इकाई, इंग्लैंड में 650 इकाई और मैक्सिको जैसे कुछ पिछड़े परंतु स्वतंत्र देश में इसका मान 80 इकाई था। आज भारत के छोटे-बड़े शहरों, कारखानों, गाँवों और अन्य जगहों में प्रति मनुष्य वार्षिक औसत लगभग 75 इकाई है। परंतु ऊर्जा का वितरण सब जगह समान नहीं है। शहरों में अधिक और गाँवों में कम ऊर्जा मिल रही है।

साधारणतः विद्युत उत्पादन कोयले से चलने वाली मशीनों द्वारा होता है। कोयले को जलाकर पानी को वाष्प में परिवर्तित किया जाता है जिसका उपयोग टरबाइनों और जनित्रों को चलाने में किया जाता है। भारत एक बड़ी नदियों वाला देश है। प्रति वर्ष जब इनमें बाढ़ आती है तब बाढ़ के पानी से बहुत विनाश होता है। यदि इस पानी को इकट्ठा कर लिया जाए और इसका उपयोग जनित्रों को चलाने में किया जाए तो विद्युत ऊर्जा पैदा की जा सकती है। इसे जल विद्युत कहते है। बहुत-सी नदियों में बाढ़ आती है और बहुत-सी सूखती भी जा रही हैं। वैज्ञानिक विधियों से नदियों का नियंत्रण किया जा सकता है। डा० साहा ने भारत की नदियों की समस्या का गहरा अध्ययन किया था। राष्ट्रीय योजना समिति की सिंचाई तथा जलमार्गों की उपसमिति के वे सदस्य थे।

सन् 1938 के बाद चार वर्षों में राष्ट्रीय योजना समिति ने बहुत-से बहुमूल्य आँकड़े इकट्ठे किए जिनके आधार पर भारत में भावी आर्थिक योजना बनी। परंतु सन् 1942 में अंग्रेजों के विरुद्ध 'भारत छोड़ो' आंदोलन चलाया गया। महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू और बहुत से अन्य राष्ट्रीय नेता ब्रिटिश सरकार द्वारा पकड़े गए और जेलों में भेज दिए गए।

दूसरा विश्वयुद्ध सन् 1939 में आरंभ हुआ था। अंग्रेज यूरोप में जर्मनी और इटली के विरुद्ध, और एशिया में जापान के विरुद्ध लड़ रहे थे। यूरोपीय मोर्चे पर लड़ने के लिए इंग्लैंड हथियार और गोला बारूद बना रहा था। जापान के विरुद्ध लड़ने के लिए सामान जहाजों द्वारा भारत भेजा जाता था। परंतु नौ-परिवहन कठिन हो गया और भारत में रक्षा-संबंधी हथियार और सामान बनाने के लिए कारखाने नहीं थे। अंग्रेजों ने भारत में उद्योगों का विकास नहीं किया था। वे इस देश में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान को प्रोत्साहन नहीं देते थे। परंतु अब उन्हें बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था।

अतएव सन् 1940 में भारत सरकार ने 'कौंसिल ऑफ सायंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च' की स्थापना की ताकि चिर-उपेक्षित वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान को देश में बढ़ावा दिया जाए। डा॰ शांतिस्वरूप भटनागर इसके संचालक और डा॰ साहा इसके सदस्य बनाए गए। इस तरह डा॰ साहा ने उपकरणों और मशीनों के बनाने के उद्योग का विकास आरंभ किया।

11

नदी विज्ञान

मेघनाद साहा ढाका जिले में पैदा हुए थे जहाँ बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं। वे एक अच्छे तैराक थे और नदियों से इन्हें प्रेम था। वे जानते थे कि नदियाँ कितनी उपयोगी होती हैं। और चूंकि वे वैज्ञानिक थे अतएव नदियों का वैज्ञानिक ढंग से नियंत्रण करने की बड़ी योजनाओं के वे जन्मदाता थे।

इस संबंध में मुझे एक घटना याद आ गई जो कुछ साल पहले घटी थी। शनिवार का दिन था और हम लोगों में से कुछ को डा० साहा ने अगले दिन सबेरे अपने घर पर बुलाया। उन्होंने कहा कि "तड़के ही साढ़े छः बजे तक आ जाना"। हम लोगों को यह मालूम था कि अनुसंधान की कुछ योजनाओं पर विचार करना था। परंतु मैंने सोचा कि इतवार को साढ़े छः बजे प्रातः काम करने के लिए जाना बहुत अधिक शीघ्र था क्योंकि सप्ताह में एक दिन मिलने वाली छुट्टी के दिन मैं वास्तव में जरा देर तक बिस्तर में लेटे रहना चाहता था।

फिर भी सदर्न ऐवेन्यू में उनके घर पर हम लोग निश्चित समय पर पहुँच गए। हम अपने पत्र आदि के साथ तैयार थे क्योंकि हमारा विश्वास था कि वे तुरंत काम पर जुट जाएँगे। परंतु इसकी बजाय उन्होंने कहा,……"आज का प्रातः अत्यंत सुहावना

है, मैं कलकत्ता की जीवन-रक्षा समिति का सदस्य हूँ, तुम लोग मेरे अतिथि के रूप में आ सकते हो। चलो काम प्रारम्भ करने के पहले झील में तैर आएँ।" निश्चित रूप से हम लोगों को इससे सुखद आश्चर्य हुआ। अच्छी तरह तैरने के बाद हम लोगों ने नाश्ता किया और फिर काम में जुट गए।

सन् 1913 में दामोदर नदी में बड़ी भयानक बाढ़ आई थी। इस नदी के इतिहास में यह अब भी सबसे अधिक स्मरणीय बाढ़ है। सहस्त्रों कुटुंब बेघर-बार हो गए। बहुत से मर गए और चौपाए बह कर डूब गए। दामोदर घाटी के बर्दवान जिले की यह अति भयानक बाढ़ थी। राष्ट्रीय नेताओं ने बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए समितियाँ कायम कीं और स्वयंसेवकों की माँग की। मेघनाद साहा उस समय अपनी 'मास्टर ऑफ सायंस' परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। वे स्वयंसेवक बने और अपने दल को बाढ़-क्षेत्र में ले गए।

लोगों के कष्ट को देखकर मेघनाद बहुत दुखी हुए। बाढ़ लगभग हर साल आती थी। तो क्या बाढ़ से मुक्ति का कोई रास्ता नहीं? यह डा॰ साहा थे जिन्होंने बाढ़ से मुक्ति पाने का मार्ग निकाला, लेकिन सन् 1913 में नहीं, उसके तीस साल बाद सन् 1943 में। इस दामोदर योजना के विषय में तुम्हें विस्तार से आगे चलकर बताऊँगा।

सन् 1923 में उत्तरी बंगाल में बाढ़ से बड़ी तबाही हुई। परंतु अंग्रेज सरकार ने लोगों की सहायता के लिए कुछ भी नहीं किया। आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने साहाय्य कार्य का आयोजन किया और डा॰ साहा ने फिर अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। वह उन्हीं दिनों इंग्लैंड से वापस आए थे। सुभाष चन्द्र बोस भी इसमें सम्मिलित हुए और अपने साहाय्य-दल को संताहर ले गए। डा॰ साहा ने प्रचार-कार्य और धन इकट्ठा करने के काम का संगठन किया और बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए तेईस लाख रुपया एकत्र किया।

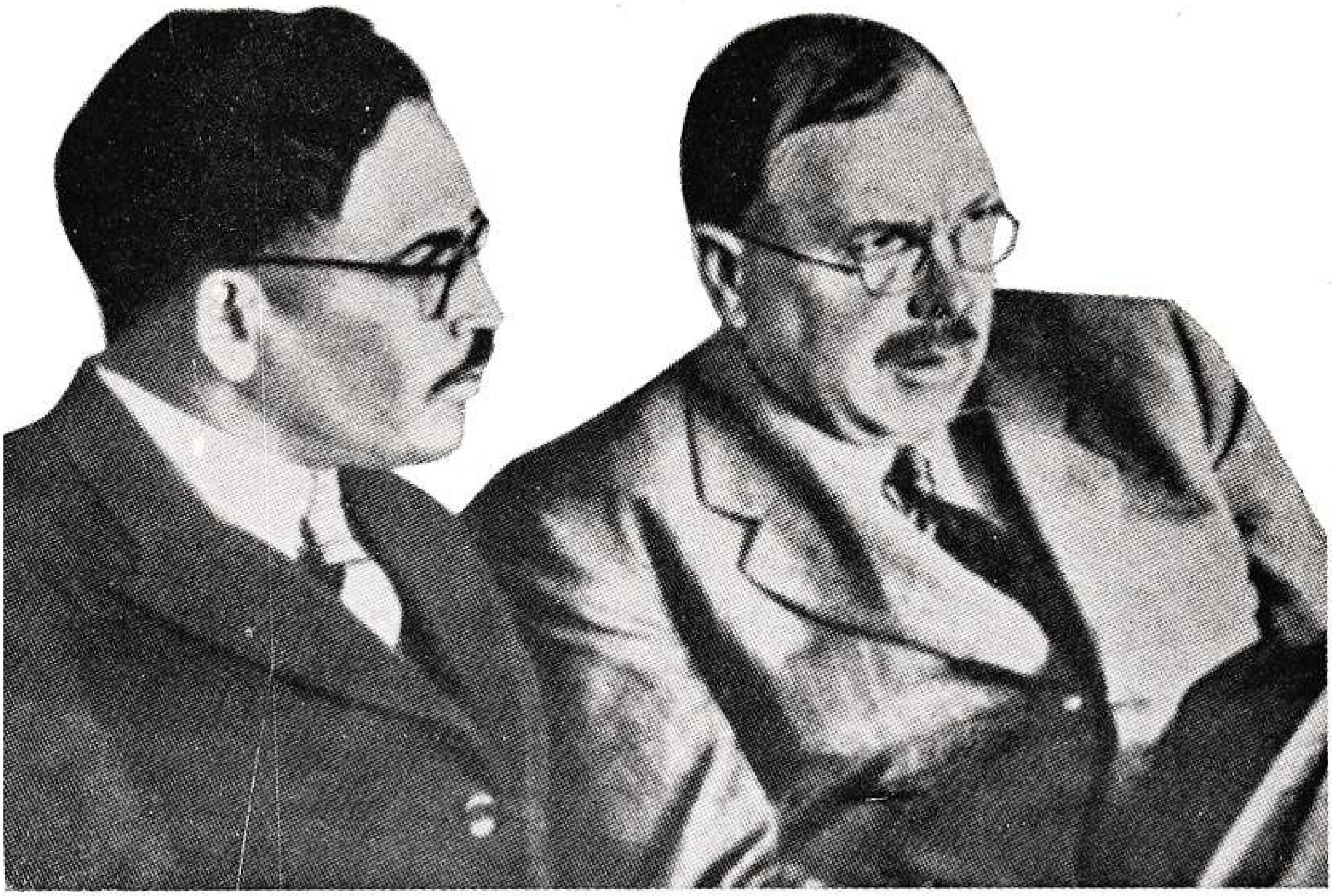
परंतु उन्होंने यह अनुभव किया कि प्रत्येक बाढ़ के बाद बाढ़-पीड़ितों की

सहायता करने की योजना बनाना ही पर्याप्त नहीं है । बाढ़ को रोकने के लिए एक योजना बनानी चाहिए । उन्होंने 'माडर्न रिव्यू' ग्रौर ग्रन्य समाचार पत्रों में बाढ़ ग्रौर उसे रोकने के उपायों पर कई लेख लिखे । उन्होंने भारत की नदियों की समस्या की व्याख्या की ग्रौर यह बताया कि जर्मनी, ग्रमरीका ग्रौर रूस में कैसे नदियों को नियंत्रित किया जाता है । वे देश ग्रपनी नदियों का वैज्ञानिक ग्रध्ययन करते हैं ग्रौर वहाँ नदियों की समस्याग्रों को सुलझाने के लिए कई प्रयोगशालाएँ हैं । डा० साहा भी भारत में नदियों पर ग्रनुसंधान के लिए कई प्रयोगशालाएँ स्थापित करवाना चाहते थे । बंगाल की ग्रपनी विशेष समस्या थी ; तीन बड़ी नदियाँ, गंगा, ब्रह्मपुत्र ग्रौर तिस्ता बंगाल से होकर गुजरती हैं । सपाट मैदान होने के कारण बंगाल में नदियों का पानी बहुत धीमी गति से बहता है जिसके कारण उनकी तली में मिट्टी ग्रौर कीचड़ जमा होती जाती है । बहुत-सी धाराएँ इस तरह बंद हो जाती हैं ग्रौर नदियाँ नया मार्ग बनाकर बहने लगती हैं । धारा के पुराने स्थान पर बहुत-सी कच्छी [दलदली] डबरियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जहाँ मच्छर पैदा होते हैं ग्रौर मलेरिया बुखार फैलाते हैं ।

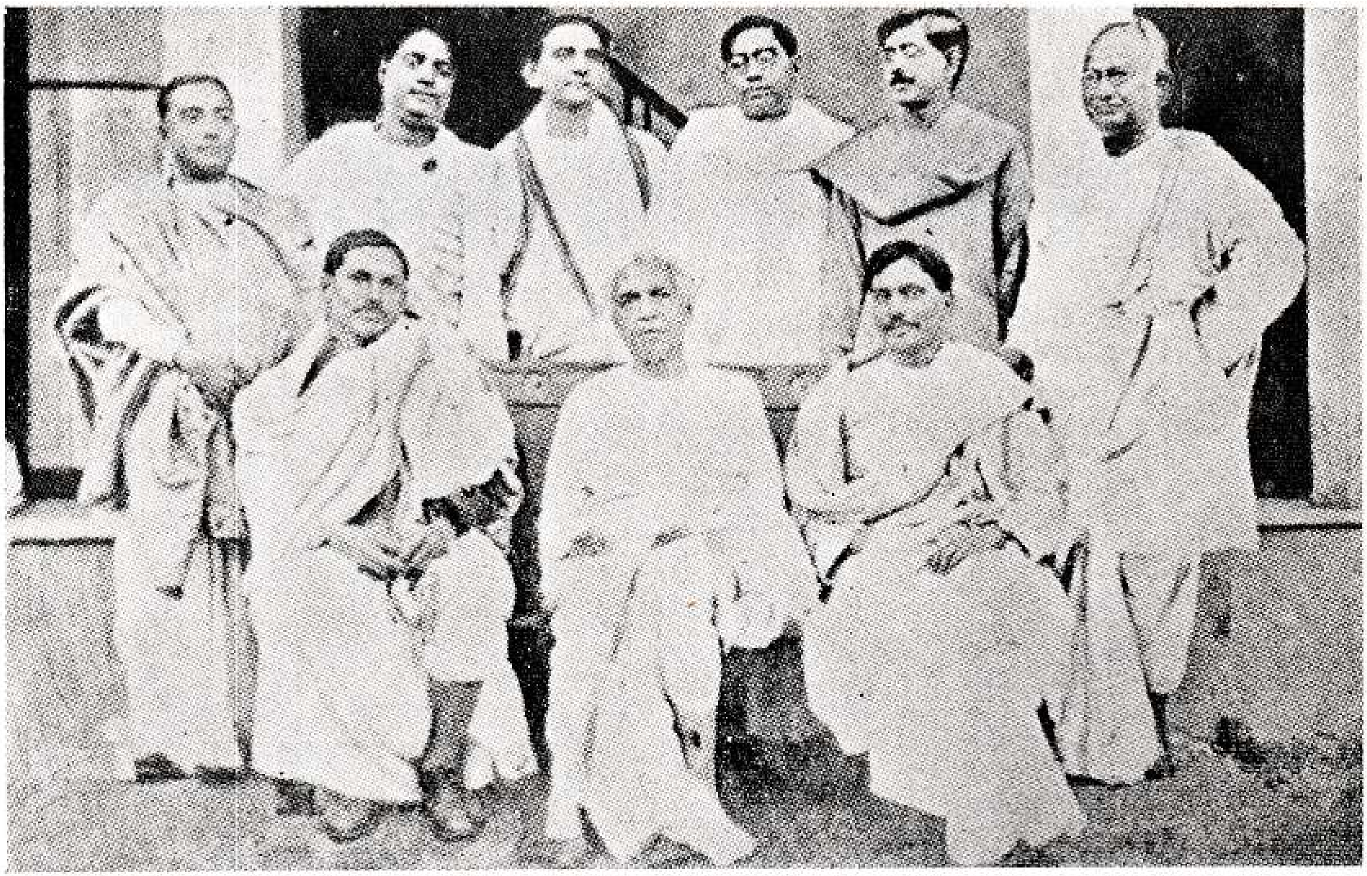
नदियों से संबंधित ग्रौर भी कई समस्याएँ हैं । इनका वैज्ञानिक ग्रध्ययन होना चाहिए जिससे नदियों से ग्रधिकतम लाभ उठाया जा सके ग्रौर वे न्यूनतम हानि पहुँचाएँ । डा० साहा बंगाल में नदी भौतिकी की प्रयोगशाला की स्थापना के पक्ष में लेख लिखते रहे ग्रौर सरकार को इसके लिए राजी करने के लिए प्रयत्नशील रहे जिसके फलस्वरूप सन् 1942 में बंगाल में नदी-ग्रनुसंधान-संस्थान की स्थापना हुई ।

दामोदर नदी में सन् 1943 में फिर भयानक बाढ़ ग्राई । सरकार ने दामोदर बाढ़ जाँच समिति की स्थापना की जिसका काम इस नदी में बार-बार बाढ़ से निवारण की योजना बनाना था । डा० साहा भी इस समिति के सदस्य थे ।

डा० साहा ने दामोदर नदी की बाढ़ों का इतिहास इकट्ठा किया । उनके साथ यह कार्य करने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुग्रा था । दामोदर नदी की बाढ़ की समस्या के चिरस्थायी रोकथाम की ग्रोर सरकार ग्रौर जनता का ध्यान ग्राकृष्ट करने के लिए



प्रोफेसर डारविन के साथ प्रोफेसर साहा, कलकत्ता, 1938



बाएँ से (खड़े) : स्नेहमय दत्त, सत्येन्द्रनाथ बोस, देवेन्द्रमोहन बोस, निखिलरंजन सेन, ज्ञानेन्द्रनाथ मुखर्जी, नगेन्द्रचन्द्र नगा ।

बाएँ से (बैठे) : मेघनाद साहा, जगदीशचन्द्र बोस, ज्ञानचन्द्र घोष ।

'सायंस एंड कल्चर' तथा ग्रन्य समाचार पत्रों में उन्होंने कई लेख लिखे। उन्होंने ग्रनुभव किया कि दामोदर जैसी शक्तिशाली नदी में बाढ़ की समस्या का हल रोकथाम के ग्रसंबद्ध उपायों द्वारा नहीं हो सकता। ग्रभी तक यही किया गया था कि नदी के दोनों किनारों पर बाँध खड़े कर दिए गए थे जिससे बाढ़ का पानी कगारों से ऊपर उठकर खेतों ग्रौर गाँवों में न चला जाए। परंतु ग्रक्सर ये बाँध पानी के तेज ग्रौर भारी बहाव को रोकने में ग्रक्षम होकर टूट जाते थे जिससे बाढ़ ग्रा जाती थी।

डा० साहा ने देखा कि दामोदर की तेज बाढ़ों को बाँधों द्वारा नियंत्रण में रखना संभव नहीं है। इसके ग्रतिरिक्त हम इस पानी का कोई उपयोग नहीं करते थे। होता यही था कि या तो इस पानी से गाँवों ग्रौर खेतों में बाढ़ ग्रा जाती थी ग्रथवा यह बह कर बंगाल की खाड़ी में चला जाता था।

डा० साहा ने समिति के सामने एक योजना रखी। उन्होंने ग्रनुभव किया कि बाढ़ों का नियंत्रण करने के लिए दामोदर ग्रौर उसकी सहायक नदियों, विशेषतः बराकर नदी पर बाँध बनाने चाहिए। जब पहाड़ी क्षेत्रों में नदियों का पानी बाँधों द्वारा जमा कर लिया जाता है तब उनसे बड़े तालाब ग्रथवा झील बन जाती हैं ग्रौर मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ नहीं ग्राती। इन झीलों का पानी साल भर थोड़ा-थोड़ा करके छोड़ा जा सकता है ग्रौर साथ-साथ इसका उपयोग विद्युत ऊर्जा उत्पन्न करने में भी किया जा सकता है। डा० साहा ने बताया कि किस तरह ग्रमरीका में टेनेसी नदी 'टेनेसी वैली ग्रथारिटी' [टी०व्ही०ए०] द्वारा बनाए गए बाँधों द्वारा नियंत्रित की जाती है।

डा० साहा ने दामोदर घाटी के लिए टी०व्ही०ए० के नमूने पर एक योजना बनाई। डा० साहा की बात मान ली गई ग्रौर दामोदर घाटी के लिए एक बहुमुखी योजना ग्रारंभ की गई। इसकी देखरेख के लिए 'दामोदर वैली कारपोरेशन' [दामोदर घाटी संघ] की स्थापना हुई। ग्रब मानसून का पानी इकट्ठा करने के लिए बाँध बनाए जाते हैं। बाँध के पानी का उपयोग विद्युत ऊर्जा उत्पन्न करने ग्रौर खेतों में सिंचाई करने के लिए किया जाता है।

12

वैज्ञानिक संस्थाओं की स्थापना

डा० साहा ने शीघ्र ही अनुभव किया कि वैज्ञानिकों के व्यक्तिगत कार्य से सारे देश को तब तक लाभ नहीं पहुँच सकता जब तक एक स्थान पर एकत्र होकर विचार-विनिमय न करें। इस देश में वैज्ञानिक प्रगति काफी हाल ही में लगभग पचास या साठ वर्ष पहले आरंभ हुई। इसके विपरीत यूरोप में वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य-गंभीर रूप से लगभग 300 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ। भारत को वैज्ञानिक प्रगति के लिए यह आवश्यक था कि हमारे वैज्ञानिक एक जगह इकट्ठे होकर एक दूसरे के कार्य के विषय में जानकारी प्राप्त करें और इसके साथ-साथ विदेशों में होने वाले वैज्ञानिक अनुसंधान की जानकारी रखें।

सन् 1913 में 'इंडियन सायंस कांग्रेस एसोसिएशन' की स्थापना हुई थी। यह पहला स्थान था जहाँ भारतीय वैज्ञानिक इकट्ठे होकर इस देश में तथा विदेशों में होने वाले वैज्ञानिक कार्यों की चर्चा कर सकते थे। सन् 1925 में डा० साहा सायंस कांग्रेस के गणित और भौतिकी विभाग के प्रेसिडेंट बनाए गए। परंतु सायंस कांग्रेस का अधिवेशन साल में एक बार होता था और डा० साहा चाहते थे कि वैज्ञानिकों को एकत्र होने के लिए और अवसर मिलें। सन् 1934 में उन्होंने उत्तर प्रदेश में एक

'ऐकैडेमी ग्रॉफ सायंस' की स्थापना की । यह संस्था उत्तर प्रदेश राज्य में एक स्थानीय संस्था के रूप में थी। जिसे बाद में 'नेशनल एकैडेमी ग्रॉफ सायंसेज़, इंडिया' का नाम दिया गया।

सन् 1934 में डा० साहा ने सायंस कांग्रेस के सामने यह प्रस्ताव रखा कि एक ग्रखिल भारतीय संस्था की स्थापना होनी चाहिए। इसके फलस्वरूप सन् 1935 में नेशनल इंस्टीच्यूट ग्रॉफ सायंसेज की स्थापना हुई। ग्रारंभ में डा० साहा इसके उप-सभापति रहे। बाद में वे सन् 1937 से 1939 तक इसके सभापति रहे। ग्रब इसे 'इंडियन नेशनल सायंस ऐकैडेमी' का नाम दिया गया है।

डा० साहा ने बहुत-सी नई वैज्ञानिक संस्थाग्रों की स्थापना की ग्रौर नए वैज्ञानिक विचारों को प्रेरणा दी। जब सन् 1938 में वे इलाहाबाद से कलकत्ता लौट कर ग्राए तब उन्होंने न केवल विज्ञान की नई-नई शाखाग्रों में ग्रनुसंधान कार्य ग्रारंभ करवाया ग्रपितु उन्होंने महेंद्र लाल सरकार प्रयोगशाला के पुनर्गठन ग्रौर इसको नया जीवन प्रदान करने की ग्रोर भी ध्यान दिया। इसका वास्तविक नाम 'इंडियन एसो-सिएशन फॉर दी कल्टीवेशन ग्रॉफ सायंस' (विज्ञान-संवर्धन की भारतीय संस्था) है परंतु साधारणत: इसे सायंस एसोसिएशन (विज्ञान संस्था) के नाम से पुकारा जाता है। यह 210, बहु बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता में डा० महेंद्र लाल सरकार के घर में ही स्थित थी। एक समय प्रो० चंद्रशेखर वेंकटरामन इसके प्रेसिडेंट थे। डा० साहा सन् 1944 में इसके मंत्री थे ग्रौर 1946 में इसके प्रेसिडेंट हुए।

जब डा० साहा सायंस एसोसिएशन के प्रेसिडेंट हुए तब उन्हें सबसे पहले इस ग्रनुसंधान संस्था के किसी बड़े ग्रौर ग्रच्छे स्थान पर ले जाने की चिन्ता हुई। बहु बाजार स्ट्रीट का मकान बहुत पुराना था ग्रौर ग्रनुसंधान के लिए वहाँ पर्याप्त जगह भी नहीं थी। बंगाल सरकार ग्रौर केंद्रीय सरकार को संस्था को धन देने के लिए उन्होंने राजी कर लिया। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप संस्था को 3,50,000 रुपयों का वार्षिक ग्रनुदान मिलने लगा। चार हेक्टेग्रर [तीस बीघा ग्रथवा लगभग 10 एकड़]

जमीन कलकत्ते के बाहरी भाग जादवपुर में मिली और सन् 1951 में सायंस एसोसिएशन अपनें नए भवन में चला गया। परंतु डा० साहा ने एसोसिएशन के सभापति के पद को सन् 1950 में ही छोड़ दिया था क्योंकि उन्होंने यह नियम बना दिया था कि 'इंडियन एसोसिएशन फॉर दी कल्टीवेशन ग्रॉफ सायंस' का कोई भी सभापति तीन साल से ग्रधिक इस पद पर नहीं रहेगा। एसोसिएशन के ग्रगले सभापति डा० ज्ञानचंद्र घोष हुए।

भारत सरकार ने सन् 1953 में डा० साहा को सायंस एसोसिएशन का निदेशक नियुक्त किया। इस पद पर वे मृत्यु पर्यंत रहे।

सायंस एसोसिएशन नई शक्ति के साथ कार्य में ग्रग्रसर हुग्रा। ग्रनुसंधान कार्य फैला ग्रतएव ग्रधिक धन की ग्रावश्यकता हुई। डा० साहा ने एक पंचवर्षीय योजना बनाई जिसमें उन्होंने ग्रनुसंधान कार्य के लिए ग्रधिक वैज्ञानिक नियुक्त करने, नए उपकरण खरीदने ग्रौर कारखाने एवं पुस्तकालय को ग्रधिक बड़ा बनाने के प्रस्ताव रखे। वैज्ञानिक ग्रनुसंधान को प्रोत्साहन देनें की दृष्टि से भारत सरकार ने एसोसिएशन की पंचवर्षिक योजना के लिए 50 लाख रुपयों का ग्रनुदान दिया।

नई ग्रनुसंधान संस्थाएँ खोलने ग्रौर पुरानी संस्थाग्रों के पुनर्गठन में इतनी दिलचस्पी लेने के साथ-साथ डा० साहा साधारण जनता में वैज्ञानिक ज्ञान की ग्रावश्यकता को भी नहीं भूले। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक साधारण जनता विज्ञान के महत्व को नहीं समझती तब तक थोड़े से वैज्ञानिक उद्योगों पर ग्रौर समाज पर विज्ञान के पूरे प्रभाव लाने में सफल नहीं हो सकते। यदि समाज के प्रत्येक स्तर में वैज्ञानिक वातावरण उत्पन्न करना है तो यह ग्रावश्यक है कि साधारण जनता में विज्ञान की ग्रनुभूति हो। तभी देश में पर्याप्त वैज्ञानिक एवं ग्रौद्योगिक प्रगति होने की संभावना है। ग्रतएव साधारण लोगों में वैज्ञानिक तथ्यों को फैलाने की ग्रावश्यकता है।

इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्होंने सन् 1935 में 'इंडियन सायंस न्यूज एसोसिएशन' की स्थापना की ग्रौर साधारण जनता के लिए एक वैज्ञानिक

पत्रिका 'सायंस एंड कल्चर' छापनी शुरु की। इस पत्रिका का ध्येय वैज्ञानिक सफलताओं को सरल और स्पष्ट भाषा में प्रस्तुत करना था जिससे साधारण जन भी वैज्ञानिक प्रगति से अवगत किए जा सके। डा० साहा ने स्वयं 'सायंस एंड कल्चर' के लिए 100 से अधिक लेख लिखे। जिन विषयों पर उन्होंने लिखा उनका प्रयास विस्मयकर है। वे लेख राष्ट्रीय योजना, वैज्ञानिक शिक्षा, उद्योग, भू-भौतिकी, बाढ़ और अकाल का नियत्रण, परमाणु-भौतिकी, इस्पात उद्योग, पंचाग सुधार, पुरातत्व तथा अन्य कई विषयों पर थे। उनके लेख उन विषयों पर उनके असाधारण ज्ञान एवं पूर्ण जानकारी के द्योतक हैं।

अमरीका के कार्नेगी ट्रस्ट ने डा० साहा को सन् 1936 में यूरोप तथा अमरीका के विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं को देखने के लिए आमंत्रित किया। वे पानी के जहाज अथवा वायुयान से यात्रा नहीं करना चाहते थे। जहाँ तक संभव था वे स्थल मार्ग से गए। अपने तेरह वर्षीय पुत्र अजीत को अपने साथ लेकर वे बसरा तक पानी के जहाज से गए। वहाँ से बगदाद तक वे ट्रेन द्वारा गए। परंतु रास्ते में वे 'ऊर' में रुके जहाँ ब्रिटेन के पुरातत्वज्ञ सर लियोनार्ड ऊली ने खुदाई की थी। ऊर दजीला-फरात की घाटी में 4000 वर्ष पुराना शहर है और एशिया की प्राचीन सभ्यता का विशिष्ट उदाहरण है। डा० साहा को प्राचीन इतिहास और सभ्यता से गंभीर प्रेम था। अतएव वे ऊर देखने गए। भारत में वे मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, पाटलीपुत्र, बुद्ध गया, राजगिर तथा अन्य पुरातात्विक महत्व के स्थानों को देख चुके थे। बगदाद से डा० साहा और उनके पुत्र अजीत ने मोटर मार्ग द्वारा रेतीले स्थानों को तय किया। वे बेरूत तक गए और फिर वहाँ से हैफा गए जहाँ से जहाज द्वारा उन्होंने भूमध्य सागर की यात्रा की।

प्राचीन इतिहास एवं सभ्यता में डा० साहा की अभिरुचि विज्ञान में उनकी गंभीर अभिरुचि से ही उत्पन्न हुई थी। यह कुछ अजीब मालूम होता है। आधुनिक विज्ञान, शिल्प विज्ञान और उद्योग का कोई संबंध प्राचीन इतिहास और सभ्यता से कैसे

हो सकता है ? और डा० साहा का संबंध इन्हीं आधुनिक विषयों से था। परंतु गंभीर विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सभी का पारस्परिक संबंध है विशेषत: यदि कोई इन विषयों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहे। प्राचीन काल में विज्ञान का धर्म तथा सभ्यता से और ज्योतिष तथा चिकित्साशास्त्र से गहरा संबंध था। जैसे-जैसे मानव सभ्यता की प्रगति हुई, विज्ञान और सामाजिक इतिहास साथ-साथ परिवर्तित हुए। उद्योगों के मशीनीकरण और वैज्ञानिक ज्ञान प्रगति के साथ मानव के इतिहास ने एक नई करवट बदली। इतिहास का अर्थ राजाओं की कहानियाँ और लड़ाइयों का हारना-जीतना नहीं है। वास्तविक इतिहास मानव की कहानी है अर्थात् उसके बौद्धिक एवं सामाजिक विकास की कहानी जिसमें विज्ञान का बहुत महत्वपूर्ण हाथ है। डा० साहा के सर्वतोमुखी मस्तिष्क ने इस सत्य को बहुत प्रारंभ में ही अपनी सहज बुद्धि से समझ लिया था। इस बात ने उनमें पुरातत्व एवं मानव की प्राचीन सभ्यता में विशुद्ध अभिरुचि उत्पन्न कर दी थी। उन्होंने एक बार कहा था कि बहुत कम लोगों को यह ज्ञात है कि उनका पहला मौलिक लेख पूर्वी बंगाल में बौद्ध प्रभाव की पुरातात्विक उपलब्धि पर है। भारतीय ज्योतिष में भी उनकी विशेष अभिरुचि थी। एक बार वह महाराजा कालेज जयपुर में भाषण देने के लिए बुलाए गए। इस अवसर से लाभ उठाकर व वहाँ हिन्दू ज्योतिष पर प्रसिद्ध वेधशाला जतंर-मंतर को देखने गए। इसे जयपुर के ज्योतिर्विद् शासक महाराजा सवाई जयसिंह [द्वितीय] ने सन् 1724 में बनवाया था। पंडित, जो स्वयं विद्वान था, भारतीय ज्योतिष में डा० साहा के असाधारण ज्ञान से बहुत प्रभावित हुआ और उनकी बड़ी सराहना की।

गणित और ज्योतिष में अपने प्रेम के कारण दुनिया के विभिन्न धर्मों का अध्ययन करने में डा० साहा की प्रवृत्ति हुई। किसी भी देश में ज्योतिष सबसे पुराना विज्ञान है और सभी देशों के प्राचीन ज्योतिष पर धर्म का प्रभाव स्पष्ट है। लगभग 4000 से 6000 वर्ष पूर्व ज्योतिष-विज्ञान का प्रादुर्भाव ईजिप्ट, भारत, चीन, यूनान, रोम और अरब आदि देशों में हुआ। ईसा से 4236 वर्ष पूर्व भी ईजिप्ट में 30

दिन का महीना और 12 महीनों का वर्ष प्रचलित था। यह सबसे पुराना पंचांग है। परंतु शीघ्र ही ईजिप्ट-वासियों ने देखा कि 30 दिनों के 12 महीनों अर्थात् 360 दिनों के वर्ष के पश्चात् सूर्य आकाश में अपने पुराने स्थान पर नहीं आता। उन्होंने देखा कि तारों के बीच अपनी पुरानी स्थिति में आने के लिए सूर्य को 5 दिन और लगते हैं। इस प्रकार 365 दिनों का वर्ष प्रारंभ हुआ।

इसके बहुत बाद चौथाई दिन की त्रुटि ज्ञात हुई और प्रत्येक वर्ष की लंबाई 365-1/4 दिन निश्चित हुई। यही कारण है कि प्रत्येक चार वर्ष के बाद एक दिन जोड़ कर फरवरी के 29 दिन होते हैं जिससे तीन सालों की चौथाई दिन की कमी पूरी हो सके। परंतु यह गणना भी पूर्णत. शुद्ध नहीं है।

डा० साहा ने विभिन्न देशों की पुरानी और नई पंचांग पद्धतियों का अध्ययन किया था। वह एक सरल और शुद्ध पंचांग बनाना चाहते थे। इस अध्ययन में उन्होंने बीस वर्ष लगाए। कौंसिल ऑफ सायंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च ने सन् 1952 में पंचांग सुधार समिति बनाई जिसके अध्यक्ष डा० साहा थे। उन्होंने इसकी रिपोर्ट सन् 1955 में दी।

इस रिपोर्ट से ज्योतिष और गणित एवं सभ्यता के इतिहास विषयक उनके असाधारण ज्ञान का पता चलता है। युनेस्को भी एक विश्वव्यापी पंचांग बनाने में प्रवृत्त था। उसने डा० साहा की पंचांग-सुधार की रिपोर्ट की बड़ी सराहना की है।

राष्ट्रीय सेवा तथा राजनीति

अपने जीवन के चालीस वर्षों तक डा० साहा विज्ञान के अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान कार्य में संलग्न रहे। अपनी देशभक्ति की भावनाओं को व्यक्त करने का उन्हें बहुत कम अवसर मिला था। यद्यपि बंगभंग के अवसर पर उन्होंने स्कूलों की हड़ताल में भाग लिया था और देश के राष्ट्रीय एवं राजनीतिक नेताओं से उनका घनिष्ठ संबंध था, परंतु राजनीति में उन्होंने सक्रिय भाग नहीं लिया था।

तथापि उन्होंने समझ लिया था कि विदेशी शासन के अंतर्गत वैज्ञानिक अनुसंधान अथवा शिक्षा का विस्तार कर सकना कठिन था। अनुसंधान अथवा शिक्षा, बाढ़ अथवा विस्थापितों की समस्या, उद्योग अथवा राष्ट्रीय योजना सब कुछ सरकार पर निर्भर करता है। उन्होंने देखा कि सरकार मंद गति से काम करती थी और बहुत आवश्यक बातों की भी उपेक्षा करती थी।

सन् 1930 से डा० साहा का संबंध सरकार की बहुत-सी समितियों से अवैतनिक तथा परामर्शदाता के रूप में था। अधिकांशत: उनका संबंध विज्ञान, शिक्षा तथा योजना से था। जब सन् 1947 में भारत विदेशी शासन से मुक्त हुआ तब हमारी सरकार ने विकास और योजना का कार्य बड़े उत्साह से हाथ में लिया। परंतु

पुराने विचार और त्रुटियाँ नई पद्धति में भी आ गई थीं। डा० साहा ने अनुभव किया कि यदि कार्य को शीघ्रतापूर्वक करना है और शिल्पविज्ञान और उद्योग को आवश्यक मनोयोग मिलना है तो इन कमियों को दूर करना चाहिए।

डा० साहा ने अपने विचारों को शरत् चंद्र बोस के सामने रखा। शरत् बोस ने उन्हें संसद सदस्य बनने की सलाह दी क्योंकि संसद में डा० साहा के विचार और परामर्श अधिक प्रभावकारी होंगे। उन्होंने डा० साहा से कहा कि सरकार के बाहर रह कर आप कुछ अधिक नहीं कर सकते। डा० साहा राजनीति में प्रवेश करना नहीं चाहते थे। परंतु बोस तथा अन्य मित्र कृतनिश्चय थे कि डा० साहा का अगाध ज्ञान और विज्ञान, शिक्षा तथा औद्योगिक योजना की अपूर्व समझ राष्ट्रीय सरकार के लिए बहुत मूल्यवान् होंगे। वे सन् 1952 में संसद के सदस्य चुने गए।

डा० साहा कांग्रेस पार्टी की ओर से चुनाव के उम्मीदवार नहीं हुए। वे चरखा और खादी के पुराने विचारों के विरुद्ध थे। वे बड़ी मशीनों वाले उद्योगों एवं विज्ञान तथा शिल्पविज्ञान द्वारा शीघ्र उन्नति करने में विश्वास करते थे। वे लोक सभा [संसद का अवर सदन] के स्वतंत्र सदस्य के रूप में चुने गए।

यद्यपि डा० साहा विपक्षी सदस्य थे तथापि संसद में उनके विचारों और आलोचनाओं का बड़ा आदर किया जाता था। परंतु योजना और प्रशासन की त्रुटियों की तार्किक आलोचनाओं से शासकीय दल को बड़ी उलझन हो जाती थी। हँसी-हँसी में एक बार एक कांग्रेस सदस्य ने उनसे कहा कि वैज्ञानिक होने के नाते उन्हें विज्ञान में लगे रहना चाहिए। डा० साहा ने कहा कि वैज्ञानिकों को यह दोष लगाया जाता है कि वे अपने एकांत मंदिर में रहते हैं। अभी तक मैं भी ऐसा ही था। परंतु समय बदल गया है। आज विज्ञान का योजना एवं प्रशासन से घनिष्ठ संबंध है। इसी कारण मैं धीरे-धीरे राजनीति के क्षेत्र में आ गया हूँ ताकि अपने वैज्ञानिक ज्ञान और समझ से देश की सेवा कर सकूँ।

डा० साहा की देश-सेवा अपूर्व है। शैक्षिक और अनुसंधान संस्थाओं को

स्थापित करने, वज्ञानिकों को उत्प्रेरणा देने और राष्ट्रीय योजना का पथ-प्रदर्शन करने में उन्होंने अथक प्रयत्न किया। उनकी सेवाएँ शिक्षा एवं अनुसंधान तक ही सीमित नहीं रहीं। साधारण जनता से उनका व्यक्तिगत प्रेम था। जवानी में उन्होंने बाढ़ के साहाय्य कार्य में स्वयंसेवक का काम किया। प्रौढ़ अवस्था में इतना प्रसिद्ध हो जाने के बावजूद भी वे दुखी लोगों को नहीं भूले।

डा० साहा ने सन् 1950 में पूर्वी बंगाल से विस्थापित लोगों की सहायता के लिए एक बड़ी संस्था का संगठन किया। उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। उन्हें उच्च रक्तचाप हो गया था जिसके कारण उनके चेहरे के बाएँ भाग में अंशत: पक्षाघात हो गया था। अपनी अस्वस्थता के बावजूद उन्होंने परिश्रम करना नहीं छोड़ा। विस्थापित लोगों के विभिन्न कैंपों में वे जाते रहते थे, यद्यपि ये कैंप असम तथा त्रिपुरा तक में थे। विस्थापित लोगों के कष्ट की ओर सर्वदा सरकार का ध्यान आकृष्ट कराते रहे।

13 फरवरी 1956 को डा० साहा संसद के बजट अधिवेशन में भाग लेने के लिए दिल्ली रवाना हुए। विस्थापितों की समस्या, बेरोजगारी और छँटनी की समस्या, नदी नियंत्रण आदि विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श करना था।

16 फरवरी को वह राष्ट्रपति भवन [तब योजना विभाग नहीं था] की ओर जा रहे थे। उनके पास कुछ महत्वपूर्ण कागजात थे। एकाएक उन्हें बेहोशी सी आई और वे गिर पड़े। कुछ भीड़ इकट्ठी हो गई और उसी में से एक सज्जन ने डा० साहा को पहचाना और सहायता के लिए वे आगे बढ़े। डा० साहा को अस्पताल ले जाया गया परंतु तब तक उनकी मृत्यु हो चुकी थी।

यह दुखद समाचार सारी दुनिया में फैल गया। भारत और संसार से एक बड़ा वैज्ञानिक तथा मानवता प्रेमी चल बसा।

क्या यह कहना ठीक है कि बड़े नगरों में रहने वाले बड़े लोगों के लड़के ही बड़े बन सकते हैं? मेघनाद बहुत गरीब माता-पिता के लड़के थे और शहरों तथा

नगरों की अपेक्षा एक छोटे गाँव में पैदा हुए थे। इतना होने पर भी वे इतने बड़े और प्रसिद्ध वैज्ञानिक बन सके। देश और विदेश में भी उनका बड़ा आदर था। अपनी गरीबी और अन्य कठिनाइयों के बावजूद वे महान बन सके। कोई भी अपने उद्यम से ही बड़ा बन सकता है।

डा० साहा न केवल स्वयं बड़े बने अपितु जो भी उनके संपर्क में आए उन सभी में बड़प्पन की छाप आ गई चाहे वे सैकड़ों की संख्या में उनके विद्यार्थी हों अथवा स्वयं उनके बच्चे परंतु सबसे बढ़ कर अपने देश को बड़ा बनाने के लिए वे आजीवन परिश्रम करते रहे।

पारिभषिक शब्दावली

अंतरिक्ष किरणें

पृथ्वी के बाहर के स्रोतों से आने वाला उच्च ऊर्जा का विकिरण। प्राथमिक अंतरिक्ष किरण पृथ्वी के वायुमंडल के भीतर आती हैं और इसमें पाए जाने वाले कणों से टकराकर द्वितीयक अंतरिक्ष किरणें उत्पन्न करती हैं। इस तरह अंतरिक्ष किरणों में तत्वों के नाभिक विशेषतः प्रोटॉन, अन्य मूल कण तथा गामा किरणें होती हैं।

आइन्स्टाइन का आपेक्षिक सिद्धांत

आइन्स्टाइन ने आपेक्षिक विशिष्ट सिद्धांत 1905 में और व्यापक सिद्धांत 1915 में प्रतिपादित किया। इनकी कुछ धारणाएँ ये हैं : (1) सभी गतियाँ सापेक्ष हैं, परम गति का कोई अर्थ नहीं है। जब तक हम सूर्य और तारों को न देखें हमें पृथ्वी की गति का भान नहीं हो सकता। यदि दो जहाज़ एक ही दिशा में एक ही गति से (जैसे 30 किमी० प्रति घंटा) जा रहे हों तो एक जहाज के यात्रियों को दूसरा जहाज़ स्थिर प्रतीत होगा। दूर तट पर खड़े व्यक्ति को जहाज़ चलते दिखाई देंगे। परंतु यदि कोई जहाज़ 40 किमी० प्रति घंटा की चाल से विपरीत दिशा में जा रहा हो तो उसके यात्रियों को दोनों जहाज़ 70 किमी० प्रति घंटा की चाल से चलते प्रतीत होंगे। इनमें से कोई भ्रांति में नहीं है (2) किसी जहाज़ अथवा किसी गतिशील प्राणी की प्रतीयमान गति निरीक्षक की गति के ऊपर निर्भर करती है। परंतु प्रकाश की गति, जो 300,000 किमी० प्रति सेंकड़ अथवा 1,86, 000 मील प्रति सेकंड है, निरीक्षक के गतिमान होने के कारण वह उसे परिवर्तित नहीं दिखती। निरीक्षक की गति चाहे जो हो, प्रकाश की गति में कोई अंतर नहीं आता। साधारण धारणा से यह धारणा बहुत विलक्षण है और इससे आपेक्षिक सिद्धांत के बहुत से निष्कर्ष निकलते हैं। (3) इस सिद्धांत के अनुसार गतिशील पिंड की लंबाई गति की दिशा में निरीक्षक को कम हो गई प्रतीत होती है। गति की मात्रा जितनी ही अधिक होती है, संकुचन भी उतना ही अधिक होता है। यहाँ तक कि प्रकाश की गति से चलने पर

इसकी लंबाई शून्य हो जाएगी (परंतु प्रकाश की गति पर किसी पिंड का चलना असंभव है)। इसके अतिरिक्त (4) गति बढ़ने के साथ-साथ पिंड की संहति बढ़ती है और (5) द्रव्य और ऊर्जा परस्पर परिमेय हैं। द्रव्य ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है, (जैसे परमाणु बम में) और ऊर्जा (जैसे प्रकाश तरंगों की ऊर्जा) द्रव्य कणों में परिवर्तित हो सकती है। वस्तुतः ऊर्जा भी द्रव्य कणों की तरह आचरण करती है। इस तरह न्यूटनीय आकर्षण सिद्धांत से भी प्रकाश की दिशा बदलनी चाहिए। व्यापक आपेक्षिक सिद्धांत के उपयोग से इस बदलाव का मान दूना प्राप्त होता है जिसके कारण तारों की 'स्थानुच्युति' दिखाई पड़ती है।

आयन

परमाणु अथवा परमाणु समूह जिसमें एक या एक से अधिक एलेक्ट्रॉन जुड़ गए हों अथवा उसमें से निकल गए हों। अतएव आयन में विद्युत आवेश होता है। सामान्य परमाणु विद्युततः उदासीन या अनावेशित होता है।

गुरुत्वाकर्षण

यदि किसी वस्तु को कोई सहारा न मिले तो वह पृथ्वी पर गिर पड़ती है। इसका कारण पृथ्वी द्वारा लगाया बल है जिसे गुरुत्वाकर्षण बल कहते हैं। सभी पिंडों में आकर्षण करने का गुण होता है। सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के कारण ही ग्रह अंतरिक्ष में नहीं चले जाते।

तत्व

पदार्थ जिसके सभी परमाणु एक ही प्रकार के हों। भौतिक तथा रसायन की पुस्तकों से तुम्हें ज्ञात होगा कि प्रकृति में 92 तत्व पाए जाते हैं। साधारण ताप एवं दाब पर कुछ तत्व (हाइड्रोजन, ऑक्सीजन नाइट्रोजन आदि की तरह) गैसीय हैं, कुछ (ब्रोमीन और पारे की तरह) द्रव हैं, तथा कुछ अन्य (गंधक, आयोडिन, ताँबा, राँगा आदि की तरह) ठोस होते हैं। जल तत्व नहीं है, यह हाइड्रोजन और ऑक्सीजन तत्वों का यौगिक है। इसी प्रकार साधारण नमक सोडियम तथा क्लोरीन का यौगिक है। परंतु पीतल ताँबे और जस्ते का सम्मिश्रण है। इसी प्रकार इस्पात लोहा कार्बन तथा कुछ अन्य धातुओं का सम्मिश्रण है।

नीहारिका

धुंधला प्रकाशयुक्त द्रव्य जो हमारी आकाशगंगा के बाहर है। यह गैसों का विस्तृत भंडार है जिसमें लाखों तारे भी होते हैं। प्रत्येक नीहारिका तारों का समूह है जिसे तारा-पुंज अथवा तारा-द्वीप कहते हैं।

परमाणु

किसी तत्व का सबसे छोटा कण। परमाणुओं के परस्पर जुड़े समूह को अणु कहते हैं। प्रत्येक परमाणु के केन्द्रीय क्रोड़ में नाभिक होता है जिसमें प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन होता है। इसके इर्दगिर्द विभिन्न कक्षाओं में एलेक्ट्रॉनों के बादल घुमड़ते रहते हैं। एलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन पर क्रमशः ऋण तथा धन आवेश होते हैं परंतु न्यूटॉन विद्युततः उदासीन होता है। एलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, एवं न्यूटॉन वे मूल कण हैं जिनसे परमाणु बनता है। एलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन के आवेश बराबर होते हैं यद्यपि एक पर ऋण आवेश और दूसरे पर धन आवेश होता है। सामान्य अवस्था में परमाणु अनावेशित अथवा उदासीन होता है क्योंकि नाभिक के प्रोटॉनों की संख्या नाभिक से बाहर एलेक्ट्रॉनों की संख्या के बराबर होती है।

रेडियोधर्मिता

कुछ तत्वों के नाभिकों का स्वतः विघटन। इन तत्वों को रेडियोधर्मी तत्व कहते हैं। यह घटना कुछ कृत्रिमतया उत्पादित परमाणुओं में भी पाई जाती है और इसे 'कृत्रिम रेडियोधर्मिता' कहते हैं ताकि इसे 'प्राकृतिक रेडियोधर्मिता' से अलग किया जा सके जो प्रकृति में पाए जाने वाले तत्वों में होती है। प्राकृतिक रेडियोधर्मी तत्व रेडियम, युरनियम, थोरियम तथा कुछ अन्य तत्व हैं। इनमें से आल्फा कण, बीटा किरण तथा गामा किरणें निकलती हैं। आल्फा कण उच्चगतीय हीलियम नाभिक होते हैं। बीटा कण उच्च गतीय एलेक्ट्रॉन और गामा किरणें किरणों से भी बहुत छोटी तरंग वाली विकिरण तरंगें होती हैं।

रेडियो संचरण

तारों के उपयोग के बिना बहुत दूरी तक संकेत भेजने का शिल्प। रेडियो तरंगें प्रकाश तरंगों की तरह विद्युत चुंबकीय तरंगें होती हैं किन्तु उनका तरंग दैर्ध्य प्रकाश तरंगों की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है।

साहा का आयनन सिद्धांत

डा० साहा ने बतलाया कि यदि तुम किसी तत्व को सूर्य अथवा किसी अन्य तारे में उसके वर्णक्रमीय रंग द्वारा पहचानना चाहते हो तो पहले तुम्हें यह जानना होगा कि वहाँ वह तत्व आयनन की किस अवस्था में हैं। गणना द्वारा वह यह बतला सके कि विभिन्न तारों में विभिन्न ताप एवं दाब पर तत्व आयनन की किस अवस्था में होंगे और इस कारण उनसे निकलने वाले प्रकाश की वर्णक्रम रेखाएँ किस रंग की होंगी। इन गणनाओं से कुछ अद्भुत परिणाम प्राप्त हुए। कुछ प्रेक्षित वर्णक्रम रेखाएँ, जिन्हें पहले समझा नहीं जा सका था, ऐसे साधारण तत्वों से निकली पाई गई जो आयनन की असाधारण अवस्थाओं में थे। यह भी समझा जा सका कि तत्वों की कुछ वर्णक्रम रेखाएँ क्यों दिखाई नहीं पड़तीं। नई प्रागुक्तियाँ हुई जो ठीक निकलीं। यह सिद्धांत सर्वप्रथम 1920 में प्रकाशित हुआ। साहा के सिद्धांत से तारभौतिकी में नई धारणाएँ उत्पन्न हुई। वैज्ञानिक इसकी सहायता से तारों की रचना एवं रंग को समझ सके जो ऐसा क्षेत्र था जिसकी पहले कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं थी।

सौर कलंक

सूर्य की सतह पर काले धब्बे। यह इस कारण उत्पन्न होते हैं कि सतह पर सब स्थानों पर सौर द्रव्य का ताप एक ही नहीं होता।

स्पेक्ट्रम विज्ञान

यह पदार्थ की संरचना ज्ञात करने के लिए प्रकाश के विश्लेषण की विधि है। जब प्रकाश प्रिज़्म से गुज़रता है तब यह पट्टियों अथवा रेखाओं में अलग-अलग हो जाता है। इसे स्पेक्ट्रम कहते हैं। किसी प्रज्वलित अथवा चमकते पदार्थ से उसका विशिष्ट प्रकार का स्पेक्ट्रम होता है जिसका अध्ययन स्पेक्ट्रमदर्शी द्वारा किया जा सकता है। इस तरह प्रकाश उत्पन्न करने वाले पदार्थ की पहचान स्पेक्ट्रम द्वारा होती है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद्